UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180621

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/K92D Accession No. H 2922

Author कृश्न चन्दर

Title धानगांव की रानी

This book should be returned on or before the date last marked below.

DHAN GAWON KI RAANI : NOVEL
KRISHNA CHANDAR
मूल्य : एक रुपया

धनगांव की रानी

दोपहर का खाना खाके मैं आराम करने की नीयत से बिस्तर पर लेटा ही था कि मेरा अर्दली चारी दरवाज़े ही से यह कहता हुआ अंदर आया, "जल्दी चलिए हज़ूर, गढ़ी से आदमी आया है, रानी साहिबा सख्त बीमार हैं।"

विश्राम में बाधा पड़ने से मैं मुंह ही मुंह में बुदबुदाता हुआ उठा, क्योंकि मुझे दोपहर में आराम करने की आदत है, और जब उसमें खंडन पड़ जाए तो मुझे बहुत अखरता है। पर गढ़ी का हुक्म तो शाही हुक्म होता है। आज़ादी के बाद और रियासतों के विलय के बाद आज भी 'धन-गांव' के इलाके में रानी साहिबा को एक तरह से पूजा होती है। गढ़ी की मालकिन का हुक्म कोई नहीं टालता—जबकि मुझे इस क्षेत्र में आए हुए सिर्फ पांच दिन हुए थे, पर इतना तो मैंने इस इतने समय में जान ही लिया था।

जितने समय में मैंने कपड़े बदले और बैग संभाला, उतनी देर में चारो मेरा घोड़ा तैयार कर चुका था। मैंने बैग गढ़ी से आए हुए आदमी को दिया और खुद घोड़ा दौड़ाते हुए आगे बढ़ गया।

धनगांव का इलाका पहाड़ी है—लोग अक्खड़, सुंदर पर तुनुकमिज़ाज हैं। इस इलाके में अभी तक कोई मोटर रोड नहीं है। गहरी खाइयों, खड्डों और घाटियोंवाली ज़मीन इतनी पथरीली है कि उसे आसानी से फसल पैदा करने पर मजबूर नहीं किया जा सकता। लोग अधिकतर फौज में भरती होते हैं और खानदानी दुश्मनी को पीढ़ी-दर-पीढ़ी याद रखते हैं।

मैं घोड़े को एड़ देकर आगे बढ़ा चला जा रहा था। एक ऊंचे पहाड़ी टीले पर गढ़ी के लाल परकोटे कभी अखरोट के घने वृक्षों में छुपते हुए, कभी धूप में चमकते हुए, पास आते जाते थे। मुझे अपने बंगले से गढ़ी के फाटक तक पहुंचने में कोई डेढ़ घंटा लग गया। फाटक पर दो चोबदार बड़ी अधीरता से मेरी बाट देख रहे थे। उन्होंने हमें आते देखकर ही गढ़ी के बड़े-बड़े फाटक, लोहे के कुंडोंवाले और शेर और मोर की चोबी तस्वीरोंवाले फाटक, खोल दिए और हम उतरे बिना अपने घोड़े दौड़ाते हुए अंदर चले गए।

एक कमानदार अंधियारी ड्योढ़ी से गुज़रकर गढ़ी के विशाल सहन में पहुंच गए, जहां धूप थी और आकाश खुला दिखाई पड़ता था और फलदार पेड़ों की पांतें सुरक्षित प्रहरियों के समान खड़ी थीं और रविशों के चारों तरफ चौकोर क्यारियों में घास ऐसी गहरी, हरी, मोटी, पुरानी और खानदानी थी जैसा धनगांव की गढ़ी का परिवार था—जो इस गढ़ी में और आसपास के क्षेत्रों पर पिछले

बारह सौ साल से राज्य करता चला आया था। ऐसी घास शहरों के लान में नहीं उगती। यह सिर्फ साइंस और खाद की सहायता से नहीं उगाई जा सकती, ऐसी घास के लिए बारह सौ साल का क्रम भी आवश्यक है!

एक नौकर ने दौड़कर मेरी रकाब थामी। मैं घोड़े से उतर आया और आंगन की रविशों पर चलता-चलता लाल पत्थरों की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर के बाग में पहुंचा, जहां शाहबलूत के घने पेड़ थे और अखरोट के छिदरे पेड़ थे और तुंग के घेरेदार बड़े-बड़े तनोंवाले पेड़ थे जिनपर अंगूर की बेलें लिपटी हुई थीं और उनके पीछे हिमालय की ऊंची चोटियां बर्फ के आवरण पहने दिखाई पड़ रही थीं—उन गर्वीली कामिनियों की तरह जो सज-संवरकर किसी पार्टी में जाने के लिए तैयार हों पर आपकी ओर देखने से कतरा रही हों। दृश्य इतना लुभावना था कि मैं चलते-चलते ठिठक गया। कुछ पलों के बाद मेरे साथ आनेवाले नौकर ने मुझे एक सभ्य टहोका दिया और मैं चौंककर उसके साथ-साथ आगे चलने लगा।

पुराने छते हुए नक्शदार कमानोंवाले एक दालान से गुज़रकर हम एक ज़नाना ड्योढ़ी में पहुंचे। यहां एक नौकरानी ने आदरपूर्वक खामोशी से हमारा स्वागत किया। मेरे साथ आनेवाले दोनों नौकर ड्योढ़ी से बाहर ही रह गए थे। और अब मेरा बैग बांदी ने संभाल लिया था। वह तेज़ पर तीखे कदमों से एक लंबे गलियारे में चलती हुई मुझे अपने पीछे आने का संकेत देती बढ़ गई। गलियारे का

कालीन बहुत ही पुराना और मूल्यवान जान पड़ता था। दोनों ओर काठ की कोमल राजपूती कमानों पर सुनहरे परदे झूल रहे थे और उनपर कहीं-कहीं कांसे, काले संग-मरमर, पीतल और अखरोट की लकड़ी को पुरानी और रहस्यमयी मूर्तियां सजी थीं। छत ज़्यादा ऊंची न थी और उससे पुराने फैशन की पुरानी पुर्तगीज़ी लालटेनोंवाले झाड़-फानूस लटक रहे थे। पूरे वातावरण में अगरबत्ती, धूप और सुगंध की महक छाई हुई थी, जो न जाने क्यों अपनी गंध के अलावा मेरे मस्तक में बेचैनी-सी पैदा करने लगी। जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता गया, अंदर ही अंदर अपने वातावरण से उलझता गया। कुछ समझ में न आया, ऐसा क्यों है ? मुमकिन है कि इसका कारण यह हो कि मेरे शहरी और विज्ञानयुक्त मस्तिष्क पर यह वातावरण बहुत अखर रहा था।

बांदी पूरा गलियारा घूमकर बांई तरफ एक बन्द दरवाज़े के सामने ले गई जिसपर फिर शेर और मोर के चोबी चित्र उभरे थे। चित्र भूरे थे और उनके आसपास का पेंट लाल रंग का था ओर बंद दरवाज़े के दोनों तरफ उच्च कोटि के चीनी जेड की झालरें लटक रही थीं। बांदी ने बंद दरवाज़े तक पहुंचकर मुझे अंदर जाने का संकेत किया और जब मैंने उसे अपने आगे चलने का इशारा किया, तो वह जल्दी से दो कदम पीछे हट गई और शांत भाव से निगाहें झुकाकर उसने मुझे हाथ के इशारे से अकेले ही अंदर जाने का इशारा किया।

मैं जेड की झालरों की लड़ियां सरकाकर दरवाज़ा खोलकर अंदर दाखिल हो गया।

वह चांदी के पायोंवाले एक ऊंचे छपरखट जैसे बिस्तर पर लेटी थी। तकियों ने उसके सर को उठा रखा था। उसका चेहरा गोल और बूढ़ा था। वे हरियाली आंखें बड़ी उत्कंठा से मुझे निहार रही थीं। क्योंकि गढ़ी के अंदर आने का और गढ़ी की मालकिन से मिलने का मेरा यह पहला अवसर था, इसीलिए मैं उसे और वह मुझे बड़े ध्यान से निरख रही थी। उसकी आंखों में एक असाधारण चमक थी और कपोल ज्वर की तीव्रता से या किसी आंतरिक खौलन से तमतमाए हुए थे और सांस तेज़ी से चल रही थी। वह बहुत बीमार दिखाई पड़ती थी—पर इस बीमारी में भी अपने को संभाले हुए थी।

"डाक्टर घोष ?" रोगिणी रानी ने आज्ञापूर्ण स्वर में मुझसे पूछा, और जब मैंने तनिक-सा झुककर सर हिलाया, तो उसने मुस्कराकर मुझे बिस्तर के पास रखी हुई एक कुर्सी पर बैठ जाने का इशारा किया।

"कहां थे तुम ? मैं पिछले चार दिनों से तुम्हारे लिए अपना आदमी भेज रही हूं।" उसके स्वर में ऐसी कठोरता थी जैसे मैं उसका ज़र-खरीद गुलाम हूं। ये लोग आज़ादी के बाद भी अपने आचरण नहीं सुधार सके। बारह सौ साल की पुरानी आदत है, कैसे बदलेगी ? पुरानी जीर्ण होकर खत्म हो जाएगी या खत्म कर दी जाएगी। पर उसका बदलना असंभव है।

मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मेरे अन्दर ही अन्दर गुस्सा बढ़ रहा है, लेकिन अपने गुस्से पर काबू पाते हुए मैंने बहुत ही आदरपूर्ण स्वर में कहा, "रानी साहिबा ! मैं दौरे पर था। पहाड़ी क्षेत्र के डाक्टर को आते ही सबसे पहले अपने क्षेत्र की सीमा और उसके रोगियों की तालिका का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।"

"तुमको सबसे पहले मेरे पास आना चाहिए था। आज तक ऐसा ही होता आया है। मैं धनगांव की रानी हूं, रियासत नहीं रही तो क्या सभ्यता का भी अन्त हो गया···?" उसके स्वर में एक तेज़ व तीव्र शिकायत थी, जिसकी नोक बड़ी कटीली थी। पर मैंने उसे भी भुला दिया और हमदर्दी-भरे स्वर में कहा—

"मुझे बहुत खेद है, वास्तव में बहुत अफसोस है··· बताइए आपको क्या दुःख है ?"

"मैं मर रही हूं।"

"यह आप क्या कह रही हैं," मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए उससे पूछा, "आप इतनी बीमार तो दिखाई नहीं पड़तीं ?"

"हो सकता है, संभव है, तुम्हारी परीक्षा यही प्रकट करे कि मुझे कोई भयानक रोग नहीं है। पर मैं जानती हूं कि मैं मर रही हूं, और संसार का कोई बड़े से बड़ा डाक्टर भी मुझे नहीं बचा सकता।"

उसकी आवाज़ में बड़ा विश्वास था। मेरी हैरानी बढ़ती गई। वह मेरी खामोशी को समझकर बोली, "तुम

अपने मन में जो सोचते हो ठीक ही सोचते हो कि जब मैं वास्तव में मर रही हूं तो तुम्हें बुलाने की क्या ज़रूरत मुझे आ पड़ी। तुम्हारा प्रश्न अपने स्थान पर बिल्कुल ठीक है, पर मैंने तुम्हें इलाज के लिए नहीं बुलाया है, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हूं। वे बातें जो मैं किसी अजनबी ही से कह सकती हूं, और तुम मेरे लिए पूर्ण अपरिचित हो। कुर्सी मेरे पास खिसका लो, मेरे पास समय बहुत कम है।"

"आप क्या कह रही हैं ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। देखिए मैं डाक्टर हूं, मैं मालूम करना चाहता हूं, आप-को बीमारी क्या है? आप क्यों मरने की बातें कर रही हैं ?"

"तुम अपना इत्मीनान कर सकते हो," रानी ने मुझे परीक्षा करने की आज्ञा दे दी।

रोगिणी की नाड़ी अति तीव्र थी। उसे एक सौ पांच डिग्री का ताप था। उसकी सांस फूली हुई थी और आंखों में एक भयावनी चमक थी और ख़ून का दबाव भयानक सीमा तक बढ़ा हुआ था। मुझे तो उसकी मान-सिक स्थिति भी ठीक नही जान पड़ती थी। सब मिलाकर हालत वास्तव में भयानक थी। मैंने रोगिणी के मना करते रहने पर भी उसे फौरन इन्जेक्शन दिया, दवा पिलाई और दूसरी विधियों का पालन करने पर ज़ोर दिया। वह हूं-हां करती रही, उसके चेहरे से लगता था जैसे वह मेरे पागल-पन से बहुत ही तंग हो चुकी है और मुझे बहलाने-भर के लिए मेरी हां में हां मिला रही है।

अचानक उसने मुझे बांहों से खींचकर कुर्सी पर बिठा

दिया और एक तेज़ पर भयानक फुसफुसाहट में बोली, "बैठ जाओ और सुन लो, जल्दी सुन लो, वह जिसे सुनाने के लिए मेरी जान अटकी हुई है।"

मैंने विवश होकर अपने हाथों को हथेलियां अपनी गोद में रख लीं, और ध्यान से उसकी बात सुनने को तैयार हो गया।

वह मेरे इन्कार करने पर भी उठकर और तकियों का सहारा लेकर बिस्तर पर बैठ गई। सहसा उसकी नज़र मेरे सर पर से गुज़र गई और दूर पीछे जाकर कहीं अटक गई। फिर उसके शरीर में एक झुरझुरी-सी आई और उसकी आंखों की भयानकता तनिक और बढ़ गई।

मैंने घबराकर पीछे देखा।

मेरे पीछे दाईं तरफ कोई तीस गज़ की दूरी पर इस कमरे में से एक दरवाज़ा एक ड्राइंग रूम में खुलता था। दरवाज़ा आधा खुला था, आधा बन्द था। आधे खुले दरवाज़े पर एक परदा बस इतना सरका हुआ था कि उससे लगे हुए ड्राइंग रूम का एक कोना-भर नज़र आ रहा था—एक कीमती कालीन, एक तिपाई और दीवार पर एक चित्र—एक ओजस्वी पुरुष का चित्र जो जोधपुरी बिर्जिस पहने हुए हाथ में एक बन्दूक ताने खड़ा था।

"वक्त क्या है?" रानी ने कांपकर मुझसे पूछा।

मैंने घड़ी देखकर बताया, "साढ़े चार बजे हैं।"

वह हांफकर बोली, "अभी दो घण्टे बाकी हैं।"

उसने ऐसे निराशा-भरे स्वर में यह कहा कि मैं

प्रभावित हुए बिना न रह सका।

"दो घण्टे ? काहे के लिए···?" मैंने हैरान होकर पूछा।

उसने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह अपने सूखे होंठों पर जीभ फिराकर बोली, "वह चित्र जो तुमने अभी देखा, जो अब भी मेरी आंखों के सामने है, कुंवर राज-बहादुरसिंह का है···।"

थोड़ी देर के लिए रानी ने मेरी तरफ से मुंह फेरकर बाईं ओर की खिड़की में देखा, जो एक ढलवान बाग में खुलती थी। बाग में फुव्वारे थे। वे नटखट बच्चों के समान घूमें मचा रहे थे और सूरज की रोशनी में खिलखिलाकर हंस रहे थे। इस कमरे से बाहर दुनिया बेहद जवान थी।

मैंने रानी की नज़रों को देखकर अन्दाज़ा लगाया कि रानी इस वक्त अपने बेड-रूम से बाहर कहीं जा चुकी है। सहसा एक गहरी 'आह' उसके होंठों से निकली, और वह यादों में डूबी हुई आवाज़ में कहने लगी—

२

" उन दिनों दुनिया बहुत जवान थी। उसे एटम बम ने बूढ़ा नहीं कर दिया था। उन दिनों गेहूं रुपये का तीस सेर मिलता था। लोग औरतों से प्रेम करते थे, राशन-कार्ड से नहीं। उन दिनों फूल खिले थे, पात हरे थे। दिल जवान था,

हवा में एक निरालापन था। अब तो हवा भी बूढ़ी हो चली है, सिसकियां लेकर कराहती हुई चलती है।

उन दिनों मैं भी जवान थी, तुमने तो मुझे उन दिनों में नहीं देखा। उन दिनों मैं ऐसी नहीं थी—यह चन्द्रवदन जो अब धुआं-धुआं-सा हो रहा है उन दिनों चमेली के फूल की तरह स्वच्छ और सबल था। सारे में धनगांव की राज-कुमारियों की धूम थी···मैं और उर्मिला, जो मेरी छोटी बहन थी, और मुझसे उमर में दो साल छोटी थी और दुगुनी सुन्दर थी मुझसे, मैं और उर्मिला जिधर से गुज़र जाती थीं—ठंडी सांसों का एक गुबार-सा पीछे रह जाता था। हाय, कैसे दिन थे वे जब अपने पसीने को सूंघकर नशा हो जाता था! आजकल की औरतें जवान नहीं होतीं—जवान होने से पहले बूढ़ी हो जाती हैं। बूढ़ी होने से पहले नौकरी कर लेती हैं और अपने पतियों से अधिक प्रावीडेंट फंड की चिन्ता रखती हैं—ये औरतें भला प्रेम करेंगी? प्रेम करने के लिए यह ज़रूरी है कि दिल के पात हरे हों—पर जब पैदा होने से पहले ही पत्ते मुर्झा जाएं और फूल कुम्हला जाएं तो प्रेम कौन करे?"

एक पल के लिए रानी के स्वर और चेहरे पर तेज़ कड़वाहट और विषाद की एक गहरी चमक पैदा हुई। फिर अगले कुछ ही पलों में वह धीरे-धीरे बुझ गई। उसका चेहरा नर्म पड़ गया और एक मधुर मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर गई।

"फिर भी यह बात मैं मान लूंगी कि कोई भी युग हो, कोई भी काल हो, को ईभी देश हो—प्रेम तो औरत ही करती है ; मर्द अधिक से अधिक चाह सकता है, पर प्रेम औरत ही करती है, क्योंकि पुरुष शरीर है और स्त्री आत्मा है। इसलिए अगर कोई मुझसे पूछे कि तुमने स्त्री होकर इस संसार में क्या किया ? तो मैं बहुत-से काम गिना सकती हूं—मैंने धनगांव की रियासत पर हुकूमत की, जैसे बारह सौ साल से मेरे पुरखे करते आए थे। फिर जब आज़ादी आई तो मैं इसी क्षेत्र से पार्लियामेंट की मेम्बर चुन ली गई और फिर इस इलाके पर मैं दूसरे ढंग से राज्य करने लगी। मैंने सर्वसाधारण की भलाई के लिए बहुत-से काम किए। अब तक पचास लड़कियों की शादी अपने खर्च से कर चुकी हूं। मैंने मंदिर बनवाए, और तालाब खुदवाए, और हर साल अपने पति की बरसो पर पांच सौ ब्राह्मणों को खाना खिलाती हूं। बदरीनारायण से कन्याकुमारी तक मैं सारे तीर्थों की यात्रा कर चुकी हूं और धनगांव की आबादी में हर साल अपने खर्च पर सैकड़ों पीपे गंगाजल मंगाकर मुफ्त बांटती हूं। क्योंकि इस कठोर बंजर और पथरीले पहाड़ी क्षेत्र में गंगाजल का मिलना दुर्लभ है। और गंगा-जल मुंह में टपकाए बिना कोई हिन्दू कैसे शान्ति से मर सकता है ? मैंने दस आदमखोर चीते मारे हैं और शायद मैं हिन्दुस्तान की और सम्भवतः इस संसार की पहली महिला हूं जिसने हाथ से इतने आदमखोर चीते शिकार किए हैं। मेरा निशाना बहुत अच्छा है। मुझे याद नहीं कि आज तक

कोई भयानक जंगली जानवर मेरी राइफल के लक्ष्य में आया हो और जान बचाकर चला गया हो। मैंने गीता की व्याख्या की है और मुझे छायावादी कविता से बहुत लगाव रहा है। हर साल अपनी गढ़ी में एक शानदार कवि-सम्मेलन करती हूं जिसमें सिर्फ छायावादी कवियों को आमंत्रित करती हूं। यह सब कुछ मैंने किया है। लेकिन अगर कोई मुझसे पूछे कि तुमने अपने जीवन में क्या किया है, तो मैं यही कहूंगी कि मैंने प्रेम किया है और खूब डट-कर किया है।"

वह चुप हो गई। मैं मुड़कर कुंवर राजबहादुरसिंह का चित्र देखने लगा, जो चांदी के फ्रेम में लगा हुआ नज़र आ रहा था। जहां मैं बैठा था वहां आधी तस्वीर परदे की ओट में थी, आधी नज़र आ रही थी। फिर भी जो कुछ नज़र आ रहा था, उसे देखते हुए यह आसानी से विश्वास किया जा सकता था कि कुंवर राजबहादुर से किसीने ऐसा ही प्रेम किया होगा। मैंने ऐसा सुंदर-सबल शरीर बहुत कम देखा है।

"मैंने उसे कालड़ा के घने जंगलों में पहली बार देखा। कालड़ा के जंगल धनगांव के इलाके और हरगांव के इलाके के ठीक बीच में स्थित हैं और दोनों रियासतों के बीच में एक तरह की सीमा का काम देते हैं। इन जंगलों में खेती-बाड़ी नहीं हो सकती और पेड़ नहीं काटे जा सकते और

कोई आबादी नहीं बसाई जा सकती। ये जंगल सिर्फ शिकार के लिए सुरक्षित कर दिए गए हैं और इनमें सिर्फ हरगांव के इलाके और धनगांव की रियासत के राजघराने के लोग ही शिकार खेल सकते हैं। इन्हीं जगलों में पहली बार मैं कुंवरराज से मिली। वह शायद अपने साथियों से कट गया था और एक चीते का अकेला सामना कर रहा था और उसकी राइफल जाम हो गई थी। मैंने देखा, दो बार क्लिक-क्लिक की आवाज़ आई, पर राइफल नहीं चली और अभिमानी चीता कुंवरराज पर जस्त लगाने के लिए अपने पिछले पंजों पर बैठ गया। बस कुछ पलों की ही बात थी···वह जस्त लेकर हवा में उड़ेगा और कुंवरराज को अपने पंजों में दबोच लेगा। मैं खड़ी देख रही थी, और मैं ऐसी जगह पर खड़ी थी कि अपनी राइफल की एक ही गोली से चीते को खत्म कर सकती थी, पर मैं वहीं की वहीं खड़ी रही। कुंवरराज ने एक पल के हज़ारवें क्षण में मुझे खड़े देखा। और हम दो अजनबियों की आंखें पहली बार चार हुईं। वह फिर चीते की तरफ देखने लगा और जब चीते ने छलांग लगाई तो कुंवरराज अपनी जगह छोड़ चुका था। चीते का दांव खाली गया। पलक-भर में कुंवरराज ने अपनी राइफल को उलटा पकड़ लिया था और अब वह अपनी राइफल के कुन्दे से चीते पर पिल पड़ा। बड़ी शानदार लड़ाई थी। ऐसा लगता था जैसे दो चीते लड़ रहे हैं और मेरे लिए लड़ रहे हैं। और मैं वहां खड़ी खामोश तक रही थी। कुंवरराज की छाती और

बायां बाज़ू और पीठ का हिस्सा खून-खून हो चुका था। लेकिन वह बहादुरी और होशियारी और आश्चर्यजनक फुर्ती से लड़े जा रहा था। इस लड़ाई के बीच में कई बार मेरी और उसकी आंखें मिलीं। नज़रें चार हुईं। एक पल में इस लड़ाई का फैसला मैं कर सकती थी, पर मैंने ऐसा नहीं किया। अगर कुंवरराज की निगाहों में एक सवाल था, तो मेरी निगाहों में उसका जवाब भी था।

अंतिम बार ऐसी तेज़ी से, जिसपर चीता भी गर्व करे, कुंवरराज ने हमला करनेवाले चीते के नीचे से फिसलकर एक पहलवान की तरह उसे चित कर दिया। फिर दोनों हाथों में राइफल पकड़कर उसने उठते हुए चीते की खोपड़ी पर ऐसा वार किया कि खोपड़ी के दो टुकड़े हो गए और चीते का भेजा उसके सर के बालों से बाहर बह निकला। एक अंतिम गुर्राहट के साथ चीता खत्म हो गया। कुंवरराज कुछ क्षणों तक हांफता-कांपता टकटकी बांधे मुझे देखता रहा फिर वहीं चीते पर गिरकर बेहोश हो गया।

३

" मैं उसे जंगल से उठाकर गढ़ी ले आई। पल-भर में उसके इतने भयानक तौर पर घायल होने की चर्चा दोनों इलाकों में फैल गई। क्योंकि कुंवरराज हरगांव के इलाके का मालिक था और मैं धनगांव की रानी थी। दोनों इलाकों

से प्रजा उसकी कुशलता मालूम करने के लिए टूट पड़ी। लेकिन डाक्टरों की सलाह से मैंने उसे किसीसे न मिलने दिया।

दस दिन तक वो जीवन और मृत्यु के बीच लटका रहा। उसने भयानक घाव खाए थे—बायें कंधे पर और दिल के पास थोड़ा ऊपर पसलियों पर। अगर चीते का पंजा थोड़ा नीचे पड़ जाता तो कुंवरराज का अन्त निश्चित था, ऐसा डाक्टरों ने मुझे बताया। सीने पर घाव थे और जांघ पर भी। वह घावों से पटा पड़ा था और पहले दस दिन तक तो डाक्टर भी नहीं कह सकते थे कि वो इन ज़ख्मों से बच भी सकेगा कि नहीं···? मगर मैंने फैसला कर लिया था कि वह जीवित रहेगा ; उसे मेरे लिए ज़िन्दा रहना ही पड़ेगा। उसने चीते को नहीं हराया था। उसने मुझे भी हरा दिया था, फर्क इतना-भर है कि जब मर्द हारते हैं तो सुलह करते हैं, जब औरत हारती है तो अपने-आप को पूर्ण-रूप से किसीको सौंप देती है।

उन दस दिनों में मैंने दिन-रात एक करके उसकी देख-भाल की। मैं दिन में जागी और रात को जागी। और मुझे याद नहीं कि मैंने कभी एक पलक भी झपकी हो, क्योंकि यह अब मेरी लड़ाई थी, मौत के साथ, और मुझे इस लड़ाई को हर तरह जीतना था। जबकि नर्सें थीं और डाक्टर थे और दवा-दारू का कुशल प्रबन्ध था, पर यह लड़ाई तो मेरी थी इसलिए मैं चौबीसों घंटे रोगी की पट्टी से लगी रहती थी और एक पलक न झपकी थी इन

दस दिनों में मैंने। "तुम्हें तो ज़िन्दा रहना ही है मेरी खातिर, कुंवरराज !" उर्मिला, मेरी छोटी बहन, बार-बार मेरे पास आती थी और मुझसे आराम करने के लिए कैसी-कैसी ज़िद्द करती थी ! उर्मिला मेरी बहुत चहेती है और मैं उसकी कोई बात टाल नहीं सकती। और थकन और नींद से मेरा सारा बदन टूट रहा था, लेकिन मैं पीछे नहीं हट सकती थी। मुझे ऐसा लगता था कि अगर मैं एक पल के लिए कुंवरराज के बिस्तर से हटी तो मौत का चीता उसे खा जाएगा।

दसवें दिन सुबह के वक्त मैं कह नहीं सकती कि कब अचानक मेरी आंख लग गई और मैं उसके बिस्तर के पास आरामकुर्सी पर बैठी-बैठी सो गई। पहली झपकी में मुझे ऐसा लगा जैसे धीरे कदमों से उर्मिला मेरे पास आ गई हो, धीरे से मेरे सर पर हाथ फेर रही हो। फिर मुझे कुछ याद नहीं रहा, कुछ मालूम नहीं, मैं कब तक सोई।

इतना-भर याद है कि जब जागी तो दिन डूब चला था। शाम हो रही थी। बांदियों ने कमरे की बत्तियां जला दी थीं और उनकी झिलमिलाती हुई सुनहरी रोशनी में जब मेरी आंख पहली बार खुली तो मैंने देखा कि कुंवरराज को होश आ गया है और उर्मिला, मेरी छोटी और चहेती बहन, उसपर झुकी हुई चांदी के चमचे से कुंवरराज के होंठों में सन्तरे का रस डाल रही है और उसके कंधों तक कटे हुए बाल उर्मिला के बार-बार झुकने से कुंवरराज के गालों पर इस तरह झुक जाते हैं जैसे प्यासी चोटियों पर बरसात के

घनेरे और काले बादल झुक जाते हैं।

कुंवरराज बहुत दुबला और कमज़ोर दिखाई देता था, पर उर्मिला की मधुर मुस्कराहट को अपने चेहरे के इतने पास देखकर उसकी आंखों में भी एक मधुरता-सी फैल गई थी। वह एक बच्चे की तरह होंठ खोले उर्मिला के हाथों से रस पी रहा था और जिस खोए हुए अन्दाज़ से उर्मिला को देख रहा था, उसे एक नज़र में ही मैं पहचान गई, मैं लड़ाई हार गई, उर्मिला ने शब-ख़ूना मारा था।

मैं यह तो नहीं कहती कि उसने जान-बूझकर ऐसा किया था, शायद मुझे सोए हुए देखकर उसने मुझे खुश करने के लिए कुंवर राज की देख-रेख संभाल ली थी। शायद उसी दिन कुंवरराज को होश में आना था। मैं जो लगातार नौ दिनों से जाग रही थी शायद उसी दिन मेरी नींद को भी आना था और होनी को होना था। कोई क्या कह सकता है ? इतना ज़रूर जानती हूं कि जब मैंने आंख खोली—उर्मिला और कुंवरराज को आंखों में आंखें डाले देखा तो ऐसा लगा जैसे उन दोनों की जान-पहचान कुछ घंटों की नहीं है बल्कि कई वर्षों की है, कई काल की है—कदाचित् हमेशा से है। दिल में एक खंजर-सा उतरता जान पड़ा। पर मैं सह गई। मैंने अपने घावों से रिसता हुआ खून आप ही पी लिया, होंठ-सी लिए और ऐसा प्रकट किया जैसे मैंने कुछ देखा ही नहीं है···।

उस दिन से मैं आप ही आप उससे पीछे हटती चली गई और उर्मिला आगे बढ़ती चली गई। अभी कुछ हुआ न था। मैंने प्यार का एक बोल तक न बोला था। दस दिन जब तक

वह बेहोश रहा, मैं जैसे उसे अपनी गोद में लिए बैठी रही और मन ही मन में अपना सब कुछ उसपर निछावर कर दिया। वह समझ कैसे सकता था ? उर्मिला भी कैसे जान सकती थी, क्योंकि अभी कुछ हुआ न था। अभी एक शब्द जान-पहचान या परिचय का या एक नज़र या एक मुस्कान तक हमारे बीच सामूहिक नहीं थी। यह बात कि मैंने उसे अपने मन में कोई स्थान दिया था, इसका ज्ञान सिर्फ मुझे था या मेरे हृदय को।

पर सिर्फ मेरे कदम ही पीछे हटे थे। मेरा प्रेम पीछे नहीं हटा था। मैं पीछे हटनेवाली औरतों में से नहीं हूं। बहुधा लोग या तो झुक जाते हैं या टूट जाते हैं। मैं न झुक सकती हूं न टूट सकती हूं, मैं सिर्फ मर सकती हूं।

तुम मुझे नहीं जानते। मैंने आज तक हार नहीं मानी। मगर उर्मिला तो मेरी सगी बहन थी। मेरी अपनी चहेती। मैं उससे भला क्या कहती ? तुमने उर्मिला को नहीं देखा। देखते तो देखते ही रह जाते। कोई उससे कुछ कह नहीं सकता। ऐसी भोली, ऐसी अबोध, ऐसी प्यारी, ऐसी कोमल, ऐसी चंचल जैसे उसका बदन मृदु समीर से रचा गया हो। उसे कोई क्या कह सकता था। वह मुझसे इतना प्यार करती थी, इतना मुझसे डरती थी कि सम्भव था मैं उससे कुछ कहती तो वह वहीं सहम जाती। उसकी आंखों से शर्म के आंसू निकल पड़ते या वह वहीं मेरे सामने खड़े-खड़े अपने अपराध के प्रभाव की भीषणता से मर जाती। जीवन में आज तक उसे सिर्फ प्यार ही प्यार मिला था। उसके

स्वर्गीय माता-पिता ने फिर उनके बाद उसकी बड़ी बहन ने उसे सिर्फ प्यार ही दिया था। और वह भी सिर्फ इस योग्य थी कि कोई उससे प्यार करे या वह किसीसे प्यार करे। वह न मेरी तरह राज-पाट करने के लिए बनाई गई थी न शिकार खेलने के लिए, न लोकसभा की सदस्या होने के लिए, न किसी सत्ता, अभिमान या अहंकार के लिए···वह सिर्फ प्यार करने के लिए बनाई गई थी। इसलिए मैंने धीरे-धीरे अपने-आप को हटा लिया—पर पूर्ण रूप से न हटा सकी। मैं भी उसकी दवा-दारू में लगी रही। उर्मिला भी। फिर धीरे-धीरे ऐसा हुआ और बिलकुल अनजाने में हुआ जैसे उर्मिला के पास अधिक समय है उसे दवा देने के लिए और मैं राज्य के काम-धन्धों में व्यस्त हूं। अब मैं उसके पास बैठती थी, पर बस अपने मन को जलाने के लिए, अपनी शंकाओं को दृढ़ करने के लिए, अपने घावों पर नमक छिड़कने के लिए। इस जलने, तपने, कुढ़ने में भी बड़ा आनन्द है। इस आनन्द को वही जानता है जिसने कभी अपने प्यार के घावों को खुद ही कुरेदा हो।

मैं लुक-छुपकर उनकी बातें सुना करती थी। एक दिन कुंवरराज उर्मिला से पूछ रहे थे—

"तुम कहती थीं कि रानीजी ने नौ दिन तक दिन-रात जागकर मेरी देख-भाल की और वह उस वक्त किसी दूसरे को मेरे पास न फटकने देती थीं ?"

"हां ! यह सच ही है।" उर्मिला ने जवाब दिया।

"तो अब वे मुझसे इतनी दूर-दूर क्यों रहती हैं ?"

"राज-पाट के काम होते हैं।"

"हां, यह भी ठीक ही है।" कुंवरराज़ ने सर झुका लिया। फिर सोच-सोचकर बोला, "मगर तुम्हारी बहन बहुत गम्भीर रहती हैं।"

"हां, गम्भीर तो हैं, क्योंकि राज्य का काम वही देखती हैं", उर्मिला बोली, "मुझे तो कुछ आता ही नहीं, मैं तो कुछ कर ही नहीं सकती, सभी कुछ बहन करती हैं।"

"क्या उनके जीवन में आज तक कोई पुरुष नहीं आया ?"

"मैंने तो देखा नहीं।"

"शायद वे प्रेम कर ही नहीं सकतीं," कुंवरराज उर्मिला का हाथ देखते हुए बोला, "उनके व्यक्तित्व में गौरव और दबदबा अधिक है। उनका मान किया जा सकता है; उनसे प्यार नहीं किया जा सकता।"

"वाह ! तुम कैसी बातें करते हो, मैं तो उनसे बहुत प्यार करती हूं," उर्मिला ने विरोध किया।

"मुझसे भी ज़्यादा ?" कुंवरराज ने पूछा।

"तुम्हारी बात और है," उर्मिला की आंखें झुक गईं, और वह बड़े कमज़ोर स्वर में बोली, कुंवरराज ने उसकी ठोड़ी के नीचे अपनी उंगली रखकर उसके चेहरे को इतना ऊपर किया कि उर्मिला की डबडबाई हुई नीली आंखें उसकी अपनी काली आंखों के बिलकुल सामने आ गईं। कुंवर ने उर्मिला के चेहरे को अपने दोनों हाथों के हाले में ले लिया और बड़े ध्यान से उन आंखों में झांकते हुए बोला—

"तुम्हारी आंखों से मुझे डर नहीं लगता ; तुम्हारी आंखें ऐसी हैं जैसे झील में नील कमल खिले हों, मगर तुम्हारी बड़ी बहन की आंखों से मुझे डर लगता है। वे गहरी हरी आंखें किसी चीते की आंखें जान पड़ती हैं।"

मैं इससे ज़्यादा न सुन सकी। धीमे कदमों से वहां से भाग गई और दौड़कर अपने कमरे में छुप गई। मैंने आंसुओं में तैरती हुई हरी पुतलियों को देखा। इस संसार में कोई क्या बदल सकता है ? न अपना स्वभाव, न अपनी आंखों का रंग, न अपने व्याकुल मन का ढंग। अच्छा तो मेरी आंखें चीते जैसी हैं ? लेकिन क्या तुमने कभी किसी चीते को रोते देखा है ; मेरी तरह बैन करते पाया है ? आंसुओ, बंद हो जाओ। चीते रोया नहीं करते···मैंने शीशे में देखते हुए अपनी आंखों से आंसू पोंछ लिए। सच ! मुझे चीते ही की तरह वीर और बर्बर होना पड़ेगा।

४

" तीन महीने में उसके घाव भर गए और वो इस योग्य हो गयाकि कभी मेरे सहारे तो कभी उर्मिला के सहारे बाग में चल-फिर सके। रास्ते में इधर आते हुए छते हुए बरामदे के बाहर तुमने वो छोटा-सा बाग ज़रूर देखा होगा, जिसमें अखरोट, शाहबलूत और तुंग के पेड़ हैं। उसके बैठने की खास जगह वो तुंग का पेड़ था जो बाग के पश्चिमी कोने में है।

खड्ड की तरफ, जिसपर अंगूर की बेलें सबसे घनी और गहरी हैं और जिसके पास संगमरमर की दीवार है जो बाग को खड्ड से अलग करती है। इस बाग के नीचे खड्ड चार हज़ार फुट गहरी जाती है और यहां से बानगंगा की नदी और उसकी घाटी और उससे परे हिमालय के ऊंचे-ऊंचे बर्फीले पहाड़ों की शृंगमालाएं दिखाई पड़ती हैं। कुंवरराज को वह जगह बहुत पसंद थी और जब वह इस काबिल हुआ कि अपने कमरे से उठकर बाहर चल-फिर सके तो वह अक्सर यहां आकर टहलता था। कभी आरामकुर्सी पर बैठ जाता था, कभी यहां सुबह का नाश्ता करता था। शाम की चाय तो बहुधा वहीं होती थी। चांदनी रातों में कभी-कभी मैंने उसे उर्मिला के साथ टहलते हुए देखा है। जबकि वे दोनों यह सोचते कि मैं अपने बेडरूम में पड़ी सो रही हूं। मैंने कुंवरराज को उर्मिला की कमर में हाथ डालकर टहलते देखा है। दोनों एक-दूसरे से लगे हुए एक-दूसरे पर झुकते हुए ; ऐसा जान पड़ता था जैसे वह तुंग का पेड़ है और उर्मिला अंगूर की बेल। दोनों एक-दूसरे से इस तरह लिपट गए हैं जैसे अब कभी अलग न होंगे और उन दोनों के ऊपर नया-नवेला चांद किसी कातिल के खंजर की तरह खूबसूरत और मैं सहन के परदों में छिपी हुई देखती हुई, रोती हुई—तुम सोच भी नहीं सकते डाक्टर घोष। वे दिन कितने खूबसूरत थे, जब मैंने अपनी आंखों के सामने अपनी उम्मीदों का खून होते देखा था। कभी उर्मिला संगमरमर के चबूतरे पर चढ़ जाती और उसपर खड़े होकर तुंग के पेड़ से लट-

कते हुए अंगूर के गुच्छों से अंगूर तोड़-तोड़कर खाने लगती। एक दाना अपने मुंह में, एक दाना कुंवरराज के मुंह में। एक आंसू मेरे गालों पर बहता हुआ। हवा धीरे-धीरे दफ बजाती हुई। दूर नीचे बानगंगा का धीमा-धीमा आर्केस्ट्रा और चबूतरे पर खड़ी पांव में पायल खनखनाती हुई, नाचती हुई, रिझाती हुई उर्मिला—और चांद की रूपहली किरनों से रचा हुआ मेरे कुंवरराज का रूप। मुस्कराता हुआ, हंसता हुआ ; बहुत ही सुंदर और बहुत ही जवान बदन। नाचती हुई उर्मिला को संगमरमर के चबूतरे से एक फूल की तरह उठाकर अपने सीने से लगा लेनेवाला, फिर उसे ऊपर हवा में उछालकर हंसती, खिललिखाती उर्मिला को अपनी बांहों की गोद में उठा लेनेवाला···सच है, इस दर्द की कोई मंजिल नहीं है। घाव जितना गहरा होता है उतना ही मज़ा देता है। फिर सोच-सोचकर मेरे दिल में ख्याल आया कि उर्मिला के रूप की काट कोई उससे अनुपम रूप ही कर सकता है और यह सोचते ही मेरा ध्यान चम्पाकली की तरफ गया। देखिए, वैसे तो रानियां और राजकुमारियां बहुत सुन्दर होती हैं मगर उनका रूप चीखता-चिल्लाता हुआ रूप नहीं होता है। वे कुछ तो रूपवती होती हैं कुछ खानदानी दबदबा और मान उनके रूप को और बढ़ा देता है। कुछ प्रोपेगैंडा, कुछ देखनेवाले की कल्पना। एक मामूली-सी राजकुमारी भी क्या से क्या दिखाई देने लगती है। मैं जानती हूं, उर्मिला ऐसी सुन्दर न थी। वह सुन्दर अवश्य थी पर वह मलिन मनरो तो नहीं थी, वह चम्पाकली भी नहीं थी।"

"यह चम्पाकली कौन है ?"

"हर रियासत में ऐसी लड़कियां रखी जाती हैं जिनका बिफरा हुआ असीम रूप अपने हाव-भाव से मर्द को बेकाबू कर सकता है। उसे पागल बना सकता है, उसके ब्रह्मचर्य को पल-छिन में भ्रष्ट कर सकता है। अपने यहां यह रस्म बहुत पुरानी है। और राजा इंद्र के समय से चली आ रही है जिन्होंने ऋषि विश्वामित्र की तपस्या से अपना सिंहासन डोलता देखकर मेनका अप्सरा को उसकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा था। वह कहानी तो तुम्हें याद होगी ?"

मैंने मुस्कराकर धीरे से सर हिला दिया।

" बस उसी दिन से हर राज्य में ऐसी लड़कियां रखी जाती हैं। नाम बदल जाते हैं उनके हर युग में, लेकिन काम नहीं बदलता है। देवता उन्हें अप्सरा कहते हैं। कोई उन्हें देवदासी कहता है, कोई कनीज़ कहता है। आजकल वे काल-गर्ल या कांट्रैक्ट-गर्ल कहलाती हैं। पर सिर्फ नाम बदलने से कहीं मनुष्य बदलते हैं ? उनका पेशा बदलता है ? बात तो वही है।

चम्पाकली एक ऐसी ही लड़की थी और मेरे यहां सिर्फ इस काम के लिए नौकर थी कि वह सिर्फ मुश्किल व जटिल समस्याओं को सुलझाती थी और आज तक उसका रेकार्ड था कि वह कभी असफल नहीं हुई थी। एक ही हल्ले में तोबा तुड़वा देती थी और मर्द को इस सीमा तक राम कर लेती थी कि वह उसके हाथ से घास भी खाने को तैयार हो जाता

था और मज़े की बात यह है कि उसे खुद कुछ नहीं करना पड़ता था। बस, वह एक बार मर्द के पास से तिरछी नज़रों से देखती हुई गुज़र जाती थी। उसके बाद उसे कुछ नहीं करना होता था। इसीलिए तो उसे हमेशा मर्दों की नज़रों से दूर महल के ज़नाने में अलग रखा जाता था और उसपर कड़ी पाबंदियां लगी हुई थीं और बड़ी सख्ती से उसकी देख-रेख की जाती थी और मर्दों से उसे दूर रखा जाता था, क्योंकि बम को हमेशा शस्त्रालय में रखते हैं और सिर्फ ज़रूरत के वक्त इस्तेमाल करते हैं।

मगर इस बार मैं चम्पाकली का प्रयोग करते समय बहुत सहमी हुई थी। कुंवरराज बच्चा तो नहीं है कि वह समझ ही न सके शतरंज की इस चाल को, जिसका मोहरा चम्पाकली थी। हो सकता है उसका शक मुझपर पड़े और ऐसा होना बहुत सम्भव भी था। डरने की दूसरी वजह यह थी कि कुंवरराज उर्मिला की मुहब्बत में इतने डूबे हुए थे कि मुझे विश्वास ही नहीं था वे कभी चम्पाकली को मुंह लगाएंगे, मगर कोशिश करने में क्या हर्ज है। अगर अपना रूप हार जाए तो किसी दूसरे का रूप उधार लेने में क्या बुराई है? प्रेम और युद्ध में सब मान्य है, और एक बार अगर भूल से भी कुंवरराज चम्पाकली की ओर झुके तो मैं खुद उर्मिला को वहां ले जाकर अपनी आंखों से उसे सब दिखा दूंगी। सबसे पहला काम तो मैंने यह किया कि चम्पाकली को उर्मिला की देख-रेख में दे दिया। अब वह उर्मिला की बांदी हो गई, मगर हर रोज़ मुझे रिपोर्ट देती रहती थी।

"आज कुछ नहीं हुआ।"

"आज भी दिन खाली गया।"

"राजकुमारीजी तो मुझे महल से बाहर ही निकलने नहीं देतीं, कहीं कुंवरराज की नज़र मुझपर न पड़ जाए," वह इठलाकर बोली।

"आज तो मैंने राम ! राम !" चम्पाकली ने अपने कानों को हाथ लगाते हुए कहा, "ऐसी हिम्मत दिखाई कि पसीना छूट रहा है अब तक ! मैंने राजकुमारीजी से साफ कह दिया, आप डरती हैं शायद मुझसे।

" उर्मिलाजी का चेहरा गुस्से से लाल हो गया, बोलीं, 'आज शाम की चाय तुम पिलाओगी कुंवरराज को—पाईं बाग में मौजूद रहना', सो मैं रही, मैंने चाय पिलाई, कुंवरजी मुझे देखते रहे, चाय के साथ-साथ आंखों ही आंखों में मुझे भी पीते रहे। मैं वे नज़रें पहचानती हूं।"

चम्पाकली खिलखिलाकर हंस पड़ी।

दूसरे दिन चम्पाकली फिर आई।

"आज तो उर्मिलाजी ने मुझे कुंवरराज के बेडरूम में भेज दिया। दूध का गिलास देकर, मैं रख आई।"

"कुंवरराज कमरे में थे ?" मेरी सांस रुकने लगी।

"हां, थे।"

"देखा उन्होंने ?"

"हां, देखा।"

"हाथ भी पकड़ा ?" मेरा दिल धड़कने लगा था।

" नहीं, बस देखते रहे—मैंने दूध का भरा गिलास

तिपाई पर रखकर जाली से ढक दिया, तिपाई को उनके छपरखट के पास लगा दिया, झुकने में और फिर झुककर ऊपर उठने में आप जानती हैं दुनिया की कोई औरत मेरा मुकाबला नहीं कर सकती। मैं देख रही थी कि कुंवरजी का चेहरा फक था और हाथ कांप रहे थे। मैं कुछ देर उनकी छपरखट के पास खड़ी तिपाई ठीक करती रही, जब वे कुछ नहीं बोले तो कूल्हे मटकाकर चलने लगी और दो कदम चलकर मुड़कर उन्हें तिरछी नज़रों से देखकर कहने लगी—

"'मैं जाऊं ?'

"वे पहले तो कुछ नहीं बोले फिर बोलने की कोशिश करते रहे, आखिर कहने लगे, 'ज़रा मेरी छपरखट पर चढ़कर उस रोशनी को ठीक करती जाओ जो मेरे सर के पीछे है, पढ़ने में रोशनी का हाल ठीक नहीं बैठता।'

"मैंने लहंगे को टखनों से ऊपर घुटनों तक चढ़ा लिया और छपरखट पर चढ़ गई। मैं उनके सर के पास की रोशनी ठीक करती रही और मेरा खयाल है कि वे मेरे टखनों की गोलाई और मेरी चन्दन जैसी पिंडलियों को देखते रहे होंगे। मुझे प्रति पल अपनी नंगी टांगों पर उनके स्पर्श का इन्तज़ार था, मगर जाने वो कैसे सब्र कर गए।"

"फिर ?"

"फिर मैं छपरखट से नीचे उतर आई। और उनके पांयती खड़ी होकर बड़े नखरों से बोली, 'आपके पांव दबा दूं ?'

"वे बड़ी मुश्किल से बोले, 'कल रात को आना।'

इतना कहकर वह मुंह में ओढ़नी दबाए ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी, "रानीजी, मर्दों के पांव बड़े चिकने होते हैं। औरत को देखते ही फिसल जाते हैं, मगर औरत होनी चाहिए।"

वह अपनी एक पाजेब को दूसरी पाजेब से बजाते हुए बोली, "अब देखिए कल रात क्या होता है ?" वह मेरे सामने अंगड़ाई तोड़ने लगी।

मैंने कहा, "चल हट, दफा हो मरदूद।"

मगर दूसरे दिन के लिए मैंने सब इन्तज़ाम कर लिया। चम्पाकली को सब पढ़ा-लिखा दिया, उर्मिला को शक तक न होने पाए, कुंवरजी से कहना तुम बारह बजे रात को आओगी, बत्ती बुझा दें, दरवाजा भेंड़ दें मगर अन्दर से बन्द न करें, तुम प्रोतिमा को लेकर अंधेरे कमरे में घुस जाना। प्रोतिमा को छपरखट के पीछे छिपा देना, जब हम दरवाज़ा खटखटाएं तो तुम छपरखट से मत उठना, खुद प्रोतिमा दरवाज़ा खोल देगी। रोशनी हम लेकर आएंगे हमारे साथ उर्मिला भी होगी।"

"समझ गई, समझ गई," वह चंचलता से सर हिला-कर बोली, "सब समझ गई···बेफिक्र रहिए रानीजी, कल सब ठीक हो जाएगा," उसकी आवाज़ में, स्वर में भावुकता की ऐसी लहक थी जैसे वह खुद आनेवाले कल के लिए बेचैन हो।

बात का यह रूप मेरी समझ में अब तक नहीं आया था। चम्पाकली की अधीरता देखकर मुझे कुछ बुरा-सा

भी लगा, मगर कुंवरराज को उर्मिला से अलग करने का और कोई रास्ता भी नहीं था। इसलिए मैंने सब इन्तज़ाम कर लिया—प्रोतिमा से कह दिया, दीवानजी से कह दिया कि वे आके मुझसे शिकायत करें, उर्मिला को मैं कल अपने कमरे में रात के बारह बजे तक रोक लूंगी। दीवानजी आएंगे, सब हाल बताएंगे, मैं हैरत में रह जाऊंगी, उर्मिला के चेहरे को तकूंगी जिसकी आंखों में आंसू होंगे, मैं विश्वास नहीं करूंगी, दीवानजी मुझसे उस जगह पर चलने के लिए कहेंगे—मैं उर्मिला को साथ लेकर चल दूंगी। पल-भर में मामला खत्म हो जाएगा।

तय तो सब हो गया। मगर रात-भर नींद नहीं आई। चम्पाकली का अधीर व बेचैन बदन आंखों को डसता रहा। सुबह हुई, दोपहर हुई, शाम हुई, रात हुई, रात के बारह भी न बजे थे कि मैं अधीर होकर कुंवरजी के कमरे के दरवाज़े तक आ पहुंची थी। अभी चम्पाकली का एक कदम दरवाज़े के अन्दर था दूसरा दरवाज़े के बाहर, उसके पीछे प्रोतिमा एक काला लबादा ओढ़े खड़ी थी। मैंने अन्दर जाती हुई चम्पा को हाथ से पकड़कर बाहर घसीट लिया और उसे चाबुक पर चाबुक मारने लगी, "तुम्हें ऐसा बदन रखने का क्या हक है चम्पाकली ? तुम तो उसके सीने से लगके सोओ और मैं उसके कदम भी न छू सकूं, तुम्हें उसके होंठों के चुम्बन मिलें और मैं उसकी गालियां भी न सुन सकूं, यह कहां का न्याय है ?"

चम्पाकली पहले कुछ पल तो चकित-सी हो रही,

फिर चीखने-चिल्लाने लगी । मगर सर झुकाके मार खाए जाती थी और मेरे पांव को बार-बार हाथ लगाए दया की भीख मांगें जाती थी । इतने में उर्मिला दौड़ी-दौड़ी आई, उसने मेरे हाथ से चाबुक छीन लिया, "जानती हो क्या कर रही थी ?" मैंने उर्मिला से पूछा ।

उर्मिला मुस्कराकर बोली, "जानती हूं ।"

"क्या जानती हो ?" मैंने बिफरकर पूछा ।

"चम्पाकली कुंवरजी के कमरे में जाने की कोशिश कर रही थी ।"

"और यह जानकर भी तुम्हारे होंठों पर मुस्कराहट है ?"

"क्यों न हो, वे तो अन्दर ही नहीं हैं ।"

"अन्दर नहीं हैं···," मेरी आवाज़ में घोर आश्चर्य था और उदासी भी ।

"हां, उन्होंने आज सुबह नाश्ते पर मुझे सब बता दिया था । वे तो दूसरे कमरे में सोए हैं," उर्मिला बोली, "विश्वास न हो तो अन्दर जाके इत्मीनान कर लीजिए ।"

मगर कमरे के अन्दर जाने की ज़रूरत न पड़ी, कुंवरजी खुद ही दूसरे कमरे से निकलकर मुस्कराते हुए हमारी तरफ चले आ रहे थे । चम्पाकली की तरफ देखकर बोले--

"आपने इस फूल-से बदन को बेकार कष्ट दिया, रानीजी । यह बदन क्या चाबुक खाने लायक है? यह कोमल बदन तो गोद में उठाने के लायक है, चलो चम्पाकली, हमारे कमरे में चलो, आज हम तुम्हारा बदन दबाएंगे ।"

वे खिलखिलाकर शोखी और शरारत में हंस पड़े, उनका स्वर अजीब-से व्यंग्य में बुझा हुआ था। चम्पाकली लज्जित होकर, पाजेब बजाती वहां से भाग खड़ी हुई।

रात के दो बजे हैं।

आंखों में नींद नहीं है। चम्पाकली नीचे कालीन पर पड़ी सिसक रही है और पूछ रही है, "आपने मुझे क्यों मारा?"

"मेरी मर्ज़ी।" मैंने सख़्ती से उसे जवाब दिया। वह रोकर बोली, "खुद ही प्लान बनाया, खुद ही फेल कर दिया।"

"मेरी मर्ज़ी, तुम पूछनेवाली कौन होती हो?"

"हमारा बदन दुखता है," उसने शिकायत करी।

"फिर मैं क्या करूं?"

"हमें और चाबुक मारिए, नहीं तो गले से लगा लीजिए।"

मैं उसे गले से लगा लेती हूं और उसके साथ सिसकने लगती हूं। अब मैं रानी नहीं रही, वह मेरी बांदी नहीं रही। अब हम सिर्फ दो औरतें हैं। मैं उसका मुंह चूमती हूं, वह मुझसे पूछती है—

"रानीजी, आपने कभी प्यार किया है?"

"तुमने किया है?"

"हां, बंसी से किया है।"

"बंसी कौन है?"

"हमारे गांव में एक गड़रिया है रानीजी, मैंने पहली

मार उसीसे खाई थी, पहला चुम्बन उसीको दिया था। रानीजी, मैं उसको भूली नहीं हूं, वही मेरा मालिक है।"

"मैं तुझे तेरे मालिक को सौंप दूंगी।"

उसका सारा बदन कांपने लगा। वह दोनों बांहें मेरे गले में डालकर मेरा मुंह चूमने लगती है और मेरे कान में कहती है, "रानीजी, आपने कभी प्यार नहीं किया?"

"नहीं।"

"रानीजी, आपको किसीने प्यार नहीं किया?"

"नहीं।"

"रानीजी, आपसे कोई प्यार करे न करे आप ज़रूर किसीसे प्यार कर लें।"

मेरी चीखें निकल जाती हैं।

"अच्छा है, मैं आज औरत बनकर तुम्हारे संग रो ली चम्पाकली, कल तुझे तेरे गड़रिये के घर दहेज देकर भिजवा दूंगी, फिर कोई न देख सकेगा, आंसुओं का यह दरवाज़ा हमेशा के लिए बन्द हो जाएगा।

५

"फिर वह दिन आ गया जिसका मुझे इन्तज़ार था। उस दिन उर्मिला अपना फक चेहरा, कांपते हुए होंठों और धड़कते दिल को लेकर अचानक चाय की मेज़ से उठ गई थी और उसके जाने के बाद ही कुंवरराज ने उर्मिला को

मुझसे मांग लिया था।

"जहां तुमने मुझे ज़िन्दगी दी है, वहां उस ज़िन्दगी की ख़ुशी भी दे दो," वह बोला।

"मैंने तुम्हें ज़िन्दगी दी है?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"हां!" उसने जवाब दिवा। "अगर तुम मुझे उस वक्त जंगल से उठाकर न लाती जब मैं चीते से लड़ाई करता-करता बेहोश हो गया था तो अब तक मैं किसी जंगली जानवर का शिकार बन गया होता। फिर जिस अपनापन से तुमने मेरी यहां देख-भाल की है उस एहसान का बदला मैं इसी तरह चुका सकता हूं कि एक एहसान अपने ऊपर और लाद लूं —ज़िन्दगी का सबसे बड़ा एहसान! करोगी?"

"ज़रूर करूंगी," मुझे अपनी आवाज़ बड़ी अजीब और झूठी-सी लगी।

"तो मुझे अपना बना लो।"

मैं चौंक गई और दिल के अन्दर की किसी अंधेरी गहरी खड्ड में पड़ी हुई किसी आस ने सर उठाके कुंवरराज के चेहरे की तरफ देखा।

"कैसे?" बरबस मेरे मुंह से निकला और दिल ज़ोर से धड़कने लगा।

"उर्मिला को मुझे देकर!"

एक ठंडी सांस मेरे मुंह से निकली, मेरे दोनों होंठ बन्द हो गए। दोनों आंखें बन्द हो गईं। गला रुकता हुआ-सा जान पड़ा, दिल थमता हुआ, और ऐसा लगा मुझे जैसे

अभी हाथ-पांव से जान निकल जाएगी। जबकि मुझे इस घड़ी का ही इन्तज़ार था और मेरा खयाल था कि मैने इस पल का सामना करने के लिए अच्छी रिहर्सल कर ली है; वो सब बेकार गया। अब आंखें कैसे खोलूं और होंठों से कैसे बोलूं। वह सब जान लेगा, मुझे जल्दी से अपने-आप पर काबू पाकर आंखें खोल, होंठों पर मुस्कराहट लाकर उसे हां कह देना चाहिए। मगर समय गुज़रता गया और मैं कुछ न कह सकी। मुझे मालूम नहीं था कि मेरी विवशता इतनी जटिल है कि कदम जहां के तहां जम जाएंगे। पगली, तूने एक पल के लिए भी क्यों सोचा था कि ऐसा न होगा और जैसे तूने सोचा था वैसे होगा। सब कुछ तेरे सामने हो रहा था और फिर भी तूने दूसरी तरह से सोच लिया, हर बात, हर भाव, हर नज़र, हर मुस्कान, हर स्पर्श के विरुद्ध जाकर भी तूने यह कैसे सोच लिया कि वह तेरा हो जाएगा। कभी तेरे हाथों को उसके हाथ नहीं मिले। कभी तेरे होंठों पर उसके होंठों की छाया नहीं पड़ी। तेरी कमर हमेशा उसके स्पर्श से कुंवारी रही। फिर, पगली, तूने कैसे एक पल के लिए भी यूं सोच लिया। हाय, मगर वह एक पल कैसा रोशन था! जैसे सारे बदन में दीवाली-सी हो गई हो और मैं भाव, आशा, अभिलाषा और सहारे की इस सुहानी रोशनी में एक पल के लिए भीगती खड़ी रह गई।

फिर मैं घूम गई और पास के एक खम्भे का सहारा लेकर खड़ी हो गई। अब मेरी पीठ उसकी तरफ थी और मेरी पीठ इसलिए उसकी तरफ थी कि कहीं वह मेरे आंसू

न देख ले जो अब बड़ी बेशर्मी और बेहयाई से मेरी आंखों से निकल-निकलकर मेरे गालों पर बह रहे थे। कुछ पलों की खामोशी के बाद मुझे धीरे से उसके कदमों की चाप सुनाई दी और मुझे ऐसा लगा जैसे वह पास आकर खड़ा हो गया। फिर उसका एक हाथ खम्भे पर गया और बेध्यानी में मेरे हाथ को छूने लगा। छूते रहो, धीरे-धीरे इसी तरह मेरे दिल के दरवाज़े पर थाप देते रहो, इसी तरह सदियां बीत जाएं, यह क्षण उमर हो जाएं।

मगर वह फिर बोल उठा, "रानीजी, आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया।"

उसके स्वर में तनिक-सी उग्रता थी।

मैं चुप रही।

क्या मैं इस योग्य नहीं हूं ?

मैं फिर कुछ बोल न सकी। वह मेरे सामने आ गया। "अरे !" सहसा उसके मुंह से निकला, "आप तो रो रही हैं।"

मैंने अपने आंसू पोंछते हुए मुस्कराते हुए उससे कहा, "ये तो खुशी के आंसू हैं—इस दिन का ही तो मुझे इन्तज़ार था, कब तुम मुझसे कुछ मांगो। मैं वचन देती हूं, उर्मिला तुम्हारी दुल्हन बनेगी। कुछ देर के लिए उसके हाथ की उंगलियां मेरे हाथों के ऊपर रुकीं। एक पल के लिए उसने मेरा हाथ ज़ोर से दबाया, फिर वहां से अलग होकर वह दूसरी खिड़की में खड़ा हो गया। मैं कमरे से बाहर चली गई। उसका चेहरा खुशी से गुलनार था।

६

" कुंवरराज को गढ़ी से विदा हुए मुश्किल से पंद्रह दिन हुए होंगे कि उनकी तरफ से उर्मिला के लिए रिश्ता आ गया ! वज़ीर माधोराम खुद रिश्ता लेके आए थे और बड़े आदर-सम्मान से उन्हें गढ़ी में खास मेहमानखाने में ठहराया गया था। सिर्फ शाम की चाय पर मेरी और उनकी मुलाकात होती थी। वज़ीर माधोराम रोज़ मेरा मुंह ताकते थे और रोज़ निराश होते थे। क्योंकि मैं इधर-उधर की सब बातें करती थी मगर इस विषय पर बातचीत न करती थी।

उर्मिला बेचारी तो आंख न मिला सकती थी। मारे शर्म के उसके गाल गुलाबी हो जाते। कभी किसी भीतरी डर से इतने पीले पड़ जाते कि उसका चेहरा पीले गुलाब जैसा दिखाई देने लगता। वज़ीर माधोराम की आंखों में एक सवाल था—मगर उर्मिला स्वयं तो साक्षात् प्रश्न थी। उसका मस्तक और उसकी आत्मा मुझसे बस एक ही उत्तर सुनने के इच्छुक थे। मगर मामला ऐसा नाज़ुक था कि उर्मिला मुंह से खुद कुछ बोल न सकती थी और वज़ीर माधोराम भी सन्देश देने के बाद यह असभ्यता नहीं कर सकते थे कि मुझसे फौरन जवाब मांगें और मैंने दिखावे में रियासत के कामों में अपने-आप को इतना उलझाए रखा था कि मानो आराम से इस विशेष समस्या पर सोच-विचार करने की घड़ी ही न आती थी।

इसी तरह वज़ीर माधोराम को हमारी गढ़ी में पड़े हुए दस रोज़ गुज़र गए। हर रोज़ उर्मिला की व्याकुलता मेरी ख़ामोशी को देखकर बढ़ती थी और वह यह समझ भी न सकती थी कि परेशानी क्या है ? हां, कह देने में अब बाकी क्या बचा है ? मैं क्यों चुप हूं और मामले को लटका क्यों रही हूं ? उसकी आंखों में ये सारे प्रश्न थे और जब कभी वह चोरनज़रों से मुझे देखती थी तो बहुत-से अपराधियों की तरह यह प्रश्न एक साथ उसकी आंखों में डरते-डरते झांकते हुए दिखाई देते थे।

पंद्रह दिन इसी खामोशी में गुज़र गए। आखिर जब मुझे मालूम हुआ कि वज़ीर माधोराम जैसे घाघ और चतुर आदमी के सब्र का प्याला भी भरने को है और हरगांव से कुंवरराज के इस विषय में दो रिमांइडर भी आ चुके हैं, तो मैंने पंद्रहवें दिन शाम की चाय पर उनसे कह दिया, "मुझे यह रिश्ता मंज़ूर है, मैंने अच्छी तरह से गौर कर लिया है। अपने सलाहकारों से सलाह भी कर ली है। सबकी एक मत से यही इच्छा है कि इस सम्बन्ध से हरगांव और धनगांव इलाके के आपस के सम्बन्ध बहुत ही मैत्रीपूर्ण हो जाएंगे इसलिए हर तरह से मुझे यह रिश्ता मंज़ूर है।"

उर्मिला के चेहरे पर खुशी की गुलाबियाँ छलकने लगीं। वज़ीर माधोराम के चेहरे पर सन्तोष की एक रोशनी दौड़ गई। आभार व्यक्त करने के लिए वह बार-बार झुक-झुककर कोर्निश बजा लाया।

"मगर एक शर्त है···" मैं बोली।

वज़ीर माधोराम कोर्निश बजाते-बजाते रुक गए। बोले, "क्या है···?"

मैंने कहा, "दीवानजी, मैंने शर्त शब्द का प्रयोग गलत किया है। लड़कीवालों की तरफ से कोई शर्त नहीं होती, मगर यहां दो राज्यों की समस्या है और आप जानते हैं देवलगांव के विषय को लेकर आपके ताल्लुके और हमारे ताल्लुके के सम्बन्धों में कैसी कटुता आ गई है। कितने बरसों तक कैसी तनातनी भी रही है। मामला रेज़ीडेंट बहादुर के हाथ से निकलकर ऊपर वायसराय तक जा पहुंचा है, लाखों रुपये हम लगा चुके हैं। लाखों रुपये आप लगा चुके हैं। मैं समझती हूं कि इस समय इस शुभ काम से पहले इस झगड़े का फैसला भी हो जाना चाहिए। आप ब्रिटिश राज्य से अपना केस वापस ले लें। देवलगांव अपने-आप हमारा हो जाएगा। कुंवरजी को बस एक खत लिखना है, ब्रिटिश सरकार को, बस।"

वज़ीर माधोराम आश्चर्य से मेरा मुंह तकने लगा। उर्मिला के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, उसका सीना ज़ोर-ज़ोर से हिल रहा था।"

"क्यों?" मैंने पूछा, "एक गांव के इधर से उधर होने में कौन ऐसा बड़ा नुकसान हो जाता? यह ऐसी कौन-सी बड़ी शर्त थी जिसपर वज़ीर माधोराम हैरत से आपका मुंह ताकने लगे?"

"तुम नहीं जानते डाक्टर, तुम इस इलाके में नये-नये आए हो। देवलगांव हमारे इलाके और हरगांव के इलाके और आसपास के पच्चीस-तीस ताल्लुकों में सबसे बड़ा धर्म स्थान है। जैनियों का इससे बड़ा धर्मस्थान कहीं नहीं है। हर साल लाखों लोग दूर-दूर से यहां यात्रा को आते हैं और कई करोड़ का चढ़ावा चढ़ता है। देखा जाए तो हरगांव के ताल्लुके की आधी आमदनी देवलगांव की वजह से है और अगर हरगांव से एक देवलगांव छीन लिया जाए तो इस ताल्लुके की सारी शान घट के आधी हो जाए।"

"मगर रानीजी, इस देवलगांव पर आपका क्या हक है?"

"सच पूछो तो हक कोई नहीं है, मगर भाग्य से कहो चाहे दुर्भाग्य से देवलगांव हमारे इलाके की सीमा पर स्थित है। है तो हरगांव के क्षेत्र में मगर चन्द सौ गज़ ज़मीन देवलगांव की हमारे हिस्से में भी आती है इसलिए पिताजी ने अपने वक्त में रेज़ीडेंट बहादुर से कह-सुनकर इसपर अपना अधिकार जता दिया और मामले को खींच-खांचकर पोलिटिकल डिपार्टमेंट तक पहुंचा दिया, जहां वह अब तक चल रहा है। और दोनों रियासतों के मान-अभिमान का प्रश्न बन चुका है।"

"तो फिर आपने ऐसी कड़ी शर्त क्यों रखी?"

"क्योंकि मुझे मालूम था कि हरगांव ताल्लुके का

कोई मालिक भी देवलगांव को हमारे इलाके में देने के लिए तैयार नहीं हो सकता। देवलगांव तो कुंवरराज के ताल्लुके की जान है।

मुझे मालूम था, वज़ीर माधोराम को मालूम था और उर्मिला को मालूम था कि मैंने कितनी कड़ी शर्त रख दी है जिसे दूसरी तरफवाले किसी तरह कबूल नहीं कर सकते। जीते-जी कौन आत्महत्या करेगा इसलिए तो हैरत से वज़ीर माधोराम और उर्मिला मुझे देखते के देखते रह गए।

वज़ीर माधोराम उठकर झुके, झुककर कोर्निश बजा लाए, बोले—

"मैं आपकी बातें कुंवरजी तक पहुंचा दूंगा, अब मुझे आज्ञा दीजिए, मुझे अपने ताल्लुके से आए हुए बहुत दिन हो गए हैं।"

उस रात को जब मैं खाने के कमरे से निकलकर अपने बेडरूम में जाने लगी तो पीछे से आकर उर्मिला ने मेरी साड़ी का पल्लू खींच लिया और घबराकर बोली—

"यह क्या किया ? इतनी कड़ी शर्त लगा दी जिसे वे कभी मंज़ूर नहीं कर सकते।"

"तुम तो कहती थीं कि वे दिल व जान से तुम्हें चाहते हैं।"

"हां, वह तो ठीक है, मगर देवलगांव···?"

"मगर वह कोई गांव थोड़े ही है, वह तो कुंवरजी की रियासत का दिल है।"

"तो जब वे दिल तुम्हें सौंप चुके तो एक गांव देने

में क्या हर्ज है···?"

उर्मिला चुपचाप मेरे चेहरे की तरफ तकने लगी, "आप चाहती क्या हैं?"

"मैं यह देखना चाहती हूं," मैंने उर्मिला के गाल को प्यार से थपथपाकर कहा, "वे मेरी गुड़िया से कितनी मुहब्बत करते हैं।"

उर्मिला लाजवाब हो गई। चुपचाप अपने कमरे में चली गई। उसका चेहरा कुम्हला गया था। वह तो बिलकुल फूल की तरह है और फूल की तरह मैंने उसे रखा है और दिल व जान से चाहती भी हूं उसे। पन्द्रह दिन तक मैं अपने दिल को समझाती चली आ रही थी और मेरा विचार था कि आज जब मैं वज़ीर माधोराम से बातचीत करने गई तो मुझे पूरी उम्मीद थी कि मैंने अपने दिल को खूब समझा लिया है और आज मैं वज़ीर माधोराम को हां बोल दूंगी और वह हां बिला शर्त होगी, फिर सहसा जाने कैसे यह शर्त बीच में आ गई, मगर अब क्या हो सकता था?

दिन पर दिन गुज़रते चले गए। उर्मिला की आंखें हर वक्त भीगी-सी रहने लगीं। उसकी आंखों के नीचे काले हलके-से नज़र आने लगे। वह अपने-आप में गुम रहने लगी। अपने वातावरण से अपरिचित, उदास, चिन्तित। ठण्डी सांसें भरनेवाली उर्मिला अक्सर तुंग के उस पेड़ के नीचे बैठी रहती जो पाईं बाग में है, और जहां चांदनी रातों में और लालिमा के स्वप्निल एकांत में वे दोनों अकेले टहला करते थे। दस दिन बीत गए, बीस दिन बीत गए, एक महीना बीत गया,

दूसरा महीना बीत गया, तीसरा महीना बीत गया।

कुंवरराज की तरफ से कोई जवाब नहीं मिला। उर्मिला अब तेज़ी से सांस लेती थी। उसकी आंखों और गालों पर एक रोषपूर्ण चमक आ गई थी और वह किसी सूरत में मुझसे आंखें मिलाने को तैयार न थी। मगर मेरे लिए घबराने की कोई बात न थी। उर्मिला अवश्य उसे भूल जाएगी। उसे भी कुंवरराज की तरह भूलना होगा। अपने दिल को सख्त कर लेना होगा। क्योंकि हम लोगों की शादियां प्रेम की शादियां कहां होती हैं। हम लोग देवलगांव की तरह हैं, पूजे जाते हैं, और जो पूजे जाते वे प्रेम नहीं कर सकते। उर्मिला, तुम्हें भी अपने प्रेम का त्याग कर देना होगा और वहीं शादी करनी होगी जहां तुम्हारी बहन हां करेगी।

फिर एक दिन जब मैं उर्मिला के कमरे में बैठी उसे अपनी नई कविता सुना रही थी कि एक बांदी मुझे यह बताने के लिए आई कि हरगांव से वज़ीर माधोराम कोई ज़रूरी संदेश लेकर आए हैं।

उर्मिला उस वक्त अपनी शृंगार मेज़ पर बैठी आंखों में काजल लगा रही थी और शीशे में मुझे देखकर मुझसे कविता सुन रही थी। जिस वक्त बांदी ने यह खबर आके दी, काजल से भरी सलाई उसकी आंख में थी। अचानक उसकी आंखें बन्द हो गईं। कुछ पल तक सलाई आंख में दबाए शृंगार-मेज़ के सामने बैठी रही फिर धीरे से सलाई निकाल-कर उसने जो मेरी तरफ देखा तो मुझे उसकी आंखें बहुत बड़ी-बड़ी, चमकती और फैली मालूम हुईं। इतनी बड़ी जैसे

सारी दुनिया का दर्द उनमें समा गया हो और अधिक दर्द की जैसे उन्हें तलाश हो। पीड़ा की कैसी दुलर्भ तस्वीर उसकी आंखों में थी। मैं उठकर बांदी के साथ बाहर आ गई। कविता अभी आधी ही सुना पाई थी।

वज़ीर माधोराम ने मुझे कुंवरराज का पत्र दिया। यह पहला पत्र था जो उन्होंने अपने हाथ से मुझे लिखा था। मेरे लिए नहीं था मगर लिखा तो मुझे ही था।

"रानीजी !

एक दिन मैंने आपसे कहा था, मैं उर्मिला के लिए जान भी दे सकता हूं। तो क्या देवलगांव नहीं दे सकता ? ले लीजिए, मगर उर्मिला को मुझे दे दीजिए।

कुंवरराज"

दिल धक् से रह गया, आंखों में आंसू चुभने लगे। मेरा सर खत पर इतना झुक गया कि वज़ीर माधोराम मेरे आंसू न देख सके। मैं रोशनी की कमी का बहाना करते हुए एक खिड़की के पास चली गई। अब मेरी पीठ माधोराम की तरफ थी और मेरी आंखें खिड़की से बाहर हिमालय की बर्फीली चोटियों पर थीं और उन सफेद बादलों पर जो कुंवरराज की तरह प्रेम करने के लिए अपनी जगह से नीचे उतर आए थे। मैंने सोचा, कुंवरराज से अब तो मेरे पास इंकार करने को कुछ नहीं रह गया है, और यह फैसला सबसे मुश्किल है—एक औरत के लिए कि जिसे वह मुहब्बत करती है उसे खुद ही किसी दूसरे को सौंप डाले।

मैंने अपने आंसू छुपा लिए। मेरी ऐसी औरतों को बहुत-

से आंसू छुपाने पड़ते हैं। औरत के लिए रोना बहुत आसान है, प्राकृतिक भी है। मगर धनगांव की रानी के आंसू कोई कैसे देख सकता है।—जब से तुम्हें देखा है कुंवरराज आंसुओं की एक नहर-सी अपने सीने में छिपाई है। वह नहर जो आंखों से सीधी अन्दर ही अन्दर दिल के किसी सूने कोने में उतर जाती है और किसीको नज़र नहीं आती है। तुम कभी मेरे आंसू न देख सकोगे कुंवरराज—कोई भी नहीं देखेगा···।

मैंने अचानक खिड़की से मुड़कर एक चमकती हुई खिली मुस्कराहट अपने चेहरे पर लाकर वज़ीर माधोराम से कहा—

"उनसे कह देना, मुझे देवलगांव नहीं चाहिए। बस, अब कुछ नहीं चाहिए। अब वे जल्दी से जल्दी लगन की तैयारी कर लें।

छः महीने बाद लग्न का समय आ गया। हमारे यहां कायदा है कि हम बारात को चार दिन पहले धनगांव की गढ़ी में बुला लेते हैं, क्योंकि इलाका पहाड़ी है, यहां कोई मोटर रोड नहीं है। लम्बे सफर में बहुत थकन हो जाती है इसलिए हम लगन से चार दिन पहले बरात को गढ़ी में मेहमान के तौर पर ठहराते हैं और अबके तो दो पड़ोसियों में शादी थी इसलिए दोनों इलाकों में बड़ी धूम-धाम थी। दूसरी रियासतों और ताल्लुकों से भी रिश्तेदार और दोस्त आदि आ गए थे। बहुत चहल-पहल थी। लगन से पहले के तीन दिन मेहमानों के आदर-सत्कार में कितनी जल्दी बीत गए! फिर लगन की रात आ गई, शादी का मंडप

सज गया। मैंने उर्मिला से कहा—

"आज मैं तुम्हें खुद अपने हाथों से सजाऊंगी।"

उर्मिला खुशी से मुझसे लिपट गई।

मैंने उसकी सब सहेलियों को उसके कमरे से निकाल दिया, खुद अपने हाथ से उसे दुल्हन का जोड़ा पहनाया, उसके बालों में फूल लगाए, बदन पर ज़ेवर सजाए; एड़ी से चोटी तक उसका शृंगार किया। उस वक्त वह इतनी प्यारी पद्मिनी कंचन-कामिनी-सी लग रही थी कि जब मैंने उसे आईना दिखाया तो वह अपनी सुन्दरता से खुद ही शर्माकर मेरे सीने से लग गई और धीरे-धीरे सिसकियां लेते हुए बोली, "मुझे डर लगता है, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊंगी।"

मैं उसे बहलाने की खातिर कमरे से निकालकर बाहर पाईंबाग में ले आई। बाग में चांद था, अंगूरों के ऊदे गुच्छे थे और दूर के फूलों की खुशबू थी। वह छम-छम करती मेरे साथ चली सीधे उस तुंग के पेड़ की तरफ जहां उन दोनों ने अपने प्रेम की पेंगें बढ़ाई थीं।

जब हम तुंग के पेड़ के नीचे पहुंचे तो चांद ऊपर पत्तों में छिप गया।

"उफ ! यहां कितना अंधेरा है, चांद नज़र ही नहीं आता।"

इतना कहकर वह संगमरमर के चबूतरे पर चढ़ गई और एड़ियां उठा-उठाकर चांद को देखने लगी और अबोध लड़की की तरह ताली बजाकर कहने लगी, "आहा जी—मैंने चांद देख लिया—चांद देख लिया !"

"नीचे उतर," मैंने उसे डांटकर कहा, "चबूतरे की दीवार से नीचे उतर।"

"नहीं," वह चंचल स्वर में बोली, "मैं अंगूर का वह गुच्छा तोड़ूंगी।"

मेरे समझाने पर भी वह नहीं मानी और उसी वक्त उचक-उचक के ऊदे अंगूरों का गुच्छा तोड़ने की कोशिश करने लगी जो उसके सर के ऊपर, बहुत ऊपर लटक रहा था। जब उसके हाथ वहां तक नहीं पहुंचे तो वह उचक-उचककर उसे तोड़ने लगी—इसी कोशिश में उसकी पीठ मेरी तरफ हो गई और अब के वह इतनी ज़ोर से उछली कि गुच्छा उसके हाथ में आ गया मगर ऊपर से नीचे आते गुच्छे को पकड़कर खुशी से चीख मारते हुए उसका पांव जो चबूतरे की दीवार से फिसला तो नीचे हज़ारों फुट गहरी खड में उसका बदन गिरता चला गया।

हाय—वह चीख ! मैं कभी उसे भूल नहीं सकती। वह चीख—दूर तक एक भयानक गूंज की तरह पहाड़ों की उतराइयों में डूबती चली गई। फिर एक पल का पूर्ण मौन, फिर बानगंगा की चंचल लहरों की गरज सारे वातावरण पर छा गई।"

धनगांव की रानी चुप थी—आखें बन्द थीं, सर तकिये से लगा हुआ था। चेहरे पर कोई भाव न थे, होंठ सख्ती से भिंचे हुए थे, सीना ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था।

"मगर", मैंने कहा, "मैंने पाईंबाग से गुज़रते

हुए उस चबूतरे को देखा था जो बाग को खड से अलग करता है। वह चबूतरा तो इतना चौड़ा है कि एक आदमी उसपर आसानी से बिस्तर लगाकर पांव फैलाकर सो सकता है; उसपर से किसीका फिसलना बहुत मुश्किल है।"

"तुम ठीक कहते हो।" धनगांव की रानी अपनी आंखें खोलकर बोली, "वह गिरी नहीं थी, मैंने उसे धक्का दे दिया था !

७

"पहला सोग का साल गुज़र गया। कुंवरराज बहादुर-सिंह अर्थात् हरगांव के स्वामी ने मुझे शादी का संदेश दिया जो मैंने अस्वीकार कर दिया। दूसरे साल फिर उसने संदेश भेजा। मैंने फिर उसे अस्वीकार कर दिया। तीसरे वर्ष उसने फिर संदेश भेजा, मैंने उसे स्वीकार कर लिया। लग्न की तारीख तय हो गई, लग्न का समय आन पहुंचा, लग्न हो गया। दोनों रियासतें एक-दूसरे में विलीन हो गईं। दोनों राज्यों की प्रजा के लिए इससे बड़ा खुशी का पल उसके जीवन में कभी न आया था। उर्मिला की शादी के वक्त भी दोनों राज्यों के परिवार तो एक हुए—मगर रिया-सतें अलग-अलग रही थीं। मेरी और कुंवरराज बहादुर की शादी से दोनों राज्य एक हो रहे थे। हमारी जो सन्तान होगी वह अब धनगांव और हरगांव दोनों ताल्लुकों पर

हुकूमत करेगी। प्रजा की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था।

वह सुहागरात मुझे हमेशा याद रहेगी। वह बड़ी ठंडी और भावुक क्षणोंवाली सुहागरात थी। मैं दुल्हन का जोड़ा अवश्य पहने हुए थी मगर अंदर से दुल्हन न अनुभव करती थी। वे दूल्हा बनके आए थे मगर कमरे के अंदर आकर मसहरी के पास आने के बजाय वे दीवार से लगे हुए सोफे पर बैठ गए थे और पास की दीवार पर लगी हुई उर्मिला की तस्वीर देखने लगे थे।

"यह तस्वीर यहां न होनी चाहिए," वे बड़े कठोर स्वर में बोले, उनके चेहरे पर किसी तरह की घबराहट नहीं थी।

"क्यों ? उर्मिला मेरी बहन थी मेरी चहेती—मेरे मां-बाप की आखिरी निशानी।"

"मेरा मतलब है, इस तस्वीर को कहीं और लगा लो। यहां बेड रूम में नहीं।" वे पूरे इतमीनान से बोले फिर उठकर खुद ही तस्वीर के पास गए, एक तिपाई पर चढ़कर उन्होंने तस्वीर उतार ली और उसे लेकर बाहर के ड्राइंग रूम में जाकर उसे टांग दिया। फिर अंदर आकर सोफे पर बैठ गए और जूता खोलकर जुराबें उतारते-उतारते बोले—

"एक बात पूछूं ?"

"पूछो।"

"तुम अगर चाहतीं तो उस रोज़ जंगल में मुझे चीते से लड़ने से बचा सकती थीं, मगर तुमने ऐसा क्यों नहीं

किया ?"

"मैं दूसरे के शिकार में बाधा नहीं डालती," मैंने दुल्हन की मसहरी से लेटे-लेटे जवाब दिया।

"और अगर चीता मुझपर हावी हो जाता तो ?"

"तो मैं उसे मार डालती, फिर जीवन-भर तुमसे बात नहीं करती।"

वे आश्चर्य से मेरी तरफ देखने लगे—मगर वहीं सोफे पर बैठे रहे। ये मेरी मसहरी पर क्यों नहीं आते ? जुराबों से क्यों खेल रहे हैं ? मेरे बदन में यह ठंडी-सी लहर कैसे दौड़ रही है, जैसे कोई ग्लेशियर मेरे दिल की ढलान पर उतरता जा रहा हो ! मेरा बदन सुन्न हो रहा है। सुहाग-रात क्या ऐसी ही ठंडी होती है ?

जुराबें तह करके उन्होंने जूते में रख दीं। फिर उठे। मैंने समझा मेरी मसहरी की तरफ बढ़ेंगे, मगर नहीं, वे तो वहीं खड़े होकर अपनी शेरवानी उतारने लगे। शेरवानी उतारकर फिर सोफे पर बैठ गए और अपनी कमीज़ के सुनहरी बटन खोलते हुए बोले—

"मैंने एक बार उर्मिला से कहा था, तुम बहुत कम-ज़ोर लड़की हो, मगर तुम्हारी बहन बहुत मज़बूत हैं, सुन्दर भी हैं मगर मज़बूत ज़्यादा हैं। इतनी मज़बूत कि लगता है यह औरत शायद औरत ही नहीं है।"

मैं कुछ समय चुप रही। खामोशी से उन्हें ताकती रही। अब उन्होंने कमीज़ उतार दी थी और अपने चौड़े-चकले सीने के बालों पर धीरे-धीरे हाथ फेर रहे थे।

मैंने डांटकर कहा, "इधर आओ।"

वे सोफे से उठे और मेरी मसहरी के पास आकर खड़े हो गए। मैंने अपनी दोनों बाहें उनके गले में डाल दीं और उन्हें अपनी तरफ झुकाते हुए बोली, "इधर आओ, मैं बताऊं कि मैं औरत भी हो सकती हूं।" "

धनगांव की रानी का चेहरा अब नकाब नहीं रहा था। वह एक औरत का चेहरा था, जो सुहागरात की मीठी यादों में खोई हुई थी। वह एक नर्म-नाजुक लजाई-सकुचाई हुई यादों का चेहरा था। अजीब चेहरा है—जब चाहता है अपने ऊपर मर्दानापन बिखेर लेता है। जब चाहता है कोमलता की साक्षात् तस्वीर बन जाता है। ऐसा विचित्र चेहरा तो मैंने आज तक नहीं देखा। धनगांव की रानी के बुड्ढे चेहरे पर इस वक्त खुशियों की लहरें दौड़ रही थीं।

मैं चुप रहा, उन सुखपूर्ण क्षणों की यादों में बाधा न डालना चाहता था। संभव है यही एक पल हो इस औरत के जीवन में। यह पल जितना ही लम्बा हो जाए, जितना भी खिंच जाए, अच्छा है।

अचानक उन सुखपूर्ण क्षणों की रेल-पेल चेहरे से गायब हो गई। अब फिर वह बुड्ढा चेहरा एक नकाब था। एक विचित्र विषाद-भरी मुस्कराहट उसके होंठों पर आई—वह धीरे से बोली—

" ऐसी रात तो फिर कभी नहीं आई मेरे जीवन में। ऐसा लगा जैसे मैंने वह सब पा लिया जिसे मैंने खो दिया था, जिसकी इच्छा मैंने जीवन-भर की थी, जिसके लिए मैंने इतना बड़ा बलिदान किया था। ऐसा लगा जैसे वे वास्तव में मुझसे और सिर्फ़ मुझसे मुहब्बत करने लगे हैं। जैसे वे उर्मिला को भूल गए हों। मुझे लगा कि उनके अंतर पर, उनके दिल व दिमाग पर मैं ही छा रही हूं।

रात के तीसरे पहर मेरी आंख खुल गई। मुझे ऐसा लगा जैसे वे बेसुध मेरी बांहों में सो रहे हैं—मैं आंखें खोलकर ध्यान से उनका चेहरा देखने लगी। चादर हटाकर उनका बदन देखने लगी। जहां-जहां चीते के पंजों के निशान रह गए थे वहां-वहां अपनी अंगुलियां धीरे-धीरे फेरने लगी। एक निशान कंधे पर था, एक सीने पर, एक एक दिल के पास। यहां—काश, मेरी उंगलियां मरहम बन जातीं और हर घाव का निशान मिटा देतीं!

अचानक वे चौंककर जागे और अपनी पसली के घाव पर मेरी उंगलियां चलती हुई अनुभव करते हुए बोले—

"क्या मेरे दिल के दाग ढूंढ रही हो?"

मैं धक् से रह गई। मेरा गला भर आया। जी चाहा उन्हें धक्का देकर अपने से अलग कर दूं और भागकर किसी दूसरे कमरे में जाकर छिपकर रोऊं। मगर उन्होंने मुझे अपनी बांहों में कस लिया था और इस तरह प्यार कर रहे थे जैसे यह बात उन्होंने किसी मतलब से नहीं कही थी—

सिर्फ़ एक ऊपरी छिछलती हुई क्रिया से ऐसा किया था। इतना प्यार किया, इतना प्यार किया, कि इस एक बात का सारा ज़हर निकल गया। बस एक हल्की-सी चुभन कहीं रह गई।

कुछ दिनों के बाद ही हम पूजा के लिए देवलगांव गए जहां हमारे इलाके के नवविवाहित जोड़े वैवाहिक जीवन की मंगल कामना प्राप्त करने के लिए जाते हैं। यहां तीन ऊंचे-ऊंचे पहाड़ी टीले हैं जिनके चारों ओर बिरहन नदी चक्कर काटती हुई घूमती है। इस नदी ने इन तीनों टीलों को एक सुन्दर द्वीप में बदल दिया है। मन्दिरों तक पहुंचने के लिए बिरहन नदी को पार करना पड़ता है। हर टीले पर दो-दो मन्दिर बने हुए हैं। सुन्दर, गोल मन्दिर, लाल पत्थर के बने हुए टीले की चोटी से उलझते हुए ऐसा लगता है जैसे किसी दुल्हन के मेहंदी-भरे हाथ प्रार्थना में व्यस्त हों।

बिरहन नदी को कई स्थानों से पैदल चलके पार किया जा सकता है, कई जगहों से तैर कर भी मगर सिर्फ एक जगह इसका पाट इतना गहरा है कि उसे किश्ती ही से पार किया जा सकता है। यहां शाही बजरे में हम सवार हुए और बजरा धीरे-धीरे दूसरे किनारे की तरफ मुड़ने लगा। यहां पहले दो मन्दिरों को जानेवाली ऊंची सीढ़ियों का घाट शुरू होता है।

उनका हाथ मेरे हाथ में था। वातावरण में एक विचित्र-सी शांति थी। धीरे-धीरे बजरा बह रहा था और ऊपर

मन्दिरों से आती हुई चांदी के घंटों की सुरीली आवाज़ और मन्दिरों से ऊपर बादल लोबान के धुंए की तरह हवा में उलझते हुए और औरतें रंगारंग साड़ियों में सजी, बच्चे संभालती हुई ऊंची-लम्बी पहाड़ी चट्टानों को काट कर बनाई गई ऊंची सीढ़ियों पर धीरे-धीरे ऊपर जाती हुई और ऊपर से नीचे उतरती हुई। मनुष्य का यह श्रम जो आकाश की ओर जाता है और वहां से कुछ लेकर वापस धरती की ओर मुड़ता है! कैसी विचित्र बात है यह वापस धरती की ओर मुड़ना। जी चाहता है कि अगर एक बार आकाश की ओर जाऊं तो वापस न आऊं—छलांग मार-कर और ऊपर कहीं चली जाऊं। मगर ऐसा हो नहीं सकता। वापस धरती की तरफ आना ही पड़ता है। कुंवर का हाथ मेरे हाथ में है और हाथ बिजली के तारों के आखरी दो सिरे होते हैं और अब हम दोनों के बीच बिजली की लहर चल पड़ी है। मध्दम-मध्दम और सुस्त लहर—व्होल्टेज की कमी है मगर लहर चल रही है। मैं उनसे पूछती हूं, "अच्छा लगता है ?"

"बहुत अच्छा !"

मैं चुप रहती हूं, अब वे मुझसे पूछते हैं, "जब मैंने तुम्हें देवलगांव दिया था, तुमने लिया क्यों नहीं ?"

मैंने उनके कंधे पर सर रखके कहा, "अब तो मैंने उससे भी बड़ी चीज़ ले ली।"

हाथों की लहर एकदम रुक-सी गई। कुछ पलों की खामोशी के बाद फिर धीरे-धोरे चलने लगी। एक दिन

इस बिजली को मैं तेज़ कर लूंगी। वह उसी वेग से दौड़ेगी जिस वेग से वह मेरी हथेली में दौड़ती है।

मैंने पूछा, "भला इस नदी को बिरहन क्यों कहते हैं ? बड़ा विचित्र-सा नाम है—बिरहन।"

"बिरहन, इसलिए कि यह नदी कभी मन्दिर के द्वार पर नहीं पहुंच सकती। हमेशा नीचे कदमों में चक्कर खाती रहती है।" वे थोड़ी उदासी-से बोले और दूर मन्दिरों की तरफ देखने लगे। फिर अचानक पलट कर उन्होंने मेरे चेहरे को अपनी हथेलियों में ले लिया और ध्यान से मेरी आंखों में देखते हुए बोले, "तुम्हारी आंखों के जंगल कितने घनेरे हैं, कहीं से अन्दर जाने का रास्ता नहीं मिलता।"

मैंने उनके सीने से लगकर सिसकके कहा, "तुम आओ तो···इस जंगल में सिर्फ एक आदमी के आने का रास्ता है और उसके लिए भी सिर्फ आने का रास्ता है बाहर जाने का नहीं है।"

वे मुस्करा दिए, बोले, "बहुत मज़बूत हो, बिल्कुल चट्टान हो, तुमपर तो एक देवल बनाना चाहिए।"

"वह तो बना लिया मैंने और एक ताज की तरह अपने सर पर सजा लिया। क्या वह मन्दिर तुम्हें दिखाई नहीं देता है ?"

निरुत्तर होकर उन्होंने मुझे छोड़ दिया और आगे चले गए और बजरे की रेलिंग से लगकर खड़े हो गए और नीचे बिरहन के नीले-बर्फीले ठंडे पानी में देखने लगे। मैं

फिर उनके पास चली गई और उनकी तरह रेलिंग से लगकर नीचे देखने लगी। फिर मुझे कुछ खयाल आया, मैंने अपनी छिगुलिया से हीरे की एक अंगूठी निकाली और उसे बजरे से नीचे नदी में गिरा दिया।

"यह क्यों ?"

"वैवाहिक जीवन की खुशी के लिए···"

वे कुछ कहने ही वाले थे कि बजरा घाट से लगने लगा। यात्रियों का शोर बढ़ गया। रोज़ की तरह रौनक थी। मगर नियम-विरुद्ध कुछ न था। हमने कह रखा था कि हमारे आगमन को गुप्त रखा जाए।

धीरे-धीरे साधारण यात्रियों के समान हम सीढ़ियां चढ़ने लगे। कभी उनका हाथ मेरे हाथ में होता, कभी उनका हाथ मेरी कमर में। "इस तरह तो ये सीढ़ियां आप सारी उमर ऊपर चढ़ती जाएं तो मैं सारी उमर उनपर चल सकती हूं।"

वे मेरे साथ-साथ लगे-लगे मुझे सहारा देकर चल रहे थे जबकि मुझे किसी सहारे की ज़रूरत न थी। मगर मुझे उनकी ज़रूरत तो थी इसलिए थोड़े-थोड़े समय के बाद मैं बेसहारा-सी ऐसी हो जाती मानो उनकी सहायता के बिना एक कदम आगे नहीं चढ़ सकती हूं। वे रुक जाते और उनका हाथ मज़बूती से मेरी कमर में आ जाता। 'ऐ देवल, थोड़े-से और ऊंचे हो जाओ, कभी न तुम तक पहुंच सकें हम···।'

अचानक उनका हाथ मेरी कमर से अलग हो गया—

बिजली की लहर कट गई। मैंने हैरान होकर उनकी तरफ देखा। वे मुझसे अलग होकर खड़े थे और ऊपर देख रहे थे। बहुत ऊपर जहां मन्दिर के अन्दर से एक औरत निकल रही थी। सफेद साड़ी में संवरी, पल्लू से अपने सर को ढांपे, चेहरे को छुपाए—एक जानी-पहचानी चाल से चलती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी। मेरा दिल धक् से रह गया। मगर यह कैसे हो सकता है ? यह उर्मिला कैसे हो सकती है ?

मगर वही चाल थी, वही कद, वही बुत, वही परिचित छटा थी जो इतनी दूर से हमें देखने को मिली थी। मगर यह उर्मिला कैसे हो सकती है ?

मैं तो वहीं जिस सीढ़ी पर खड़ी थी वहीं खड़ी रह गई, मगर वे जैसे किसी स्वप्न को अपने पास आते, नीचे उतरते देखकर मुझसे बेसुध, संसार से बेसुध उसकी तरफ जाने लगे। यह भी नहीं देखा कि उनके कदम कहां पड़ रहे हैं, ऊपर सीढ़ियां चढ़ने लगे। पांव से नहीं···उस एक निगाह की डोरी से जो नीचे उतरनेवाली औरत के आधे छिपे चेहरे पर पड़ रही थी। वे ऊपर ही ऊपर चढ़ते गए और शायद उनके दिल की धड़कन और व्याकुलता के साथ-साथ उनके कदम भी तेज़ होते गए।

जब वे उस औरत के पास पहुंचे तो हवा के एक तेज़ झोंके से अचानक उस औरत के सर से पल्लू सरक गया और उसका पूरा चेहरा उनकी और मेरी आंखों में आ गया और अचानक मैंने इत्मीनान की एक लम्बी सांस भरी और मेरा

रोम-रोम, जो अब तक इन कुछ पलों में एक असीम पीड़ा से तड़पने लगा था, अचानक फूल की तरह हलका हो गया। यह चेहरा तो किसी दूसरी औरत का चेहरा था। वह दूर से मिलती-जुलती छवि अब खत्म हो चुकी थी। यह भी कोई अमीर और धनाढ्य स्त्री थी जो अपनी जवानी में बहुत सुन्दर थी या रही होगी। मगर अब तो यह चेहरा एक अधेड़ उमर की औरत का चेहरा था। वह मेरे पास से आंखें झुकाए, नज़रें सीढ़ियों के पत्थरों पर जमाए नीचे उतर गई और मैं ऊपर चढ़ने लगी। ऊपर चढ़ते-चढ़ते तेज़-तेज़ कदमों से मैंने कुंवरजी को जा लिया और जाते ही उनका हाथ मज़बूती से पकड़ लिया।

उन्होंने मुझसे आंखें चुराकर ऊपर मन्दिर की तरफ देखते हुए कहा, "कुछ पलों के लिए मैं हैरान रह गया उस औरत को देखकर। चाचीजी यहां कैसे आ गईं। वे तो दिल्ली में हैं और बीमार हैं···चाचीजी···" वे मुंह ही मुंह में बड़बड़ाने लगे। मैंने चुप रहना ही उचित जाना।

८

" देवलगांव से वापस आकर हम लोग हनीमून मनाने के लिए नैनीताल चले गए। वैसे तो हमारे इलाके में भी कई पहाड़ी स्थान हैं मगर मैं उन जाने-पहचाने इलाकों से कहीं दूर जाना चाहती थी। जहां का वातावरण हम दोनों के लिए

अजनबी हो—जहां के वातावरण में उनको उर्मिला की याद न सताए या इतनी तो न सताए जितनी यहां उसकी यादों में रचे-बसे वातावरण में सताती है।

चाइना पीक की तरफ जाते हुए देवदारों से घिरे हुए राजा साहब पामपुर का एक काटिज जैसा महल हमें रहने को मिल गया जिसके छते हुए बरामदे की चोबी महराबों से लिपटी हुई बेलों में पीले गुलाब खिले हुए थे—जहां सुबह बैठकर हम नाश्ता करते थे, जहां से नीचे नैनीताल की खूब-सूरत घाटी का सारा दृश्य दिखाई देता था। चारों तरफ से गोल घाटियों ने नीचे उतरकर एक छोटी-सी झील को अपनी गोद में ले लिया था और ऊंची-ऊंची घाटियों के हरे-भरे जंगलों में सुंदर-सजीली कोठियां नटखट बच्चों की तरह इधर-उधर छिपी हुई थीं। कभी बादल लहराकर जो नीचे उतर आते तो ज़मीन हमारी नज़रों से कट जाती और ऐसा लगता जैसे हमारा काटेज हवा के डैनों पर अलिफ-लैला के किसी ज़िन्न की हथेली पर उड़ रहा है, और अजीब-अजीब-सी कविताएं मेरे मन में आने लगती।

"यह कहते मुझे आश्चर्य होता है कि तुम्हारे ऐसी चट्टान की तरह मज़बूत औरत कविता कैसे कर लेती है?"

मैं कहती, "मगर चट्टान में दरारें भी तो होती हैं—जहां हरियाली उगती है।"

रात को अतलसी सोफोंवाले ड्राइंग रूम में सोने से पहले वे मुझसे मेरी कविता सुना करते थे। ड्राइंग रूम की बत्तियां बुझा दी जातीं। सिर्फ नीले बिल्लौर का एक छोटा-

सा फानूस मेरे सर के ऊपर जलता रहता। उसकी हल्की-हल्की नीली-नीली रोशनी छन-छनकर मेरे कपड़ों पर और मेरी कविता के कागज़ पर पड़ती रहती, और मैं कविता में खोई हुई उन्हें सुनाती रहती और वे मेरे बाईं ओर मेरे सोफे से हटकर अपनी कुर्सी को थोड़ा परे खिसकाकर इस तरह बैठते थे जहां से मैं उन्हें नहीं देख सकती थी सिर्फ वे मुझे देख सकते थे और वह भी मेरा दायां रुख और उसका वह हिस्सा जहां काले बालों की लहराती हुई एक लट और कान की एक लौ केशों की ओट में और थोड़ा-सा दायें गाल का छोर···बस इतना-भर ही उन्हें नज़र आता था और मुझे जब देखना होता तो पलटकर मैं उन्हें देख सकती थी।

"कविता सुनने का यह ढंग है!" मैं उनसे कहती, "सामने आके बैठो।"

"सामने आके बैठूंगा तो चेहरे में खो जाऊंगा," वे मुस्कराकर कहते। "मुझे यहीं से सुनना अच्छा लगता है। आवाज़ भी साफ आती है और यह नीली रोशनी जो छन-कर तुम्हारे कपड़ों पर उतरती है इससे तुम आकाश की परी जान पड़ती हो।"

ऐसी प्रशंसा तो उन्होंने कभी नहीं की थी और यह दिखावटी प्रशंसा भी नहीं थो। आवाज़ में गहरापन था और दुःख को छूती हुई ऐसी सच्चाई जो मुझे प्रभावित किए बिना न रही।

अब मैं हर रोज़ उसी तरह बैठती थी जैसे मुझे बैठने के लिए कहते थे और वही कविताएं सुनाती थी जो उन्हें

पसन्द थीं। वे उसी जगह बैठते थे जो उन्हें इतनी प्रिय थी। कविता सुनते-सुनते वे खोए हुए भाव में पीछे से चलकर मेरे पास आ जाते। मुझे सहसा अपने सोफे से उठाकर अपनी बांहों में सिमेट लेते और बेड रूम की ओर चलने लगते। उस वक्त मैं उनके सीने की व्याकुल धड़कनें साफ सुन सकती थी। मेरी कविता जैसे उनपर जादू कर देती थी और वे किसी और ही दुनिया में पहुंच जाते थे और मुझे सीने से लिपटाए बहुत-बहुत प्यार करते थे। मैं मदहोश-सी हो जाती थी।

मैं कविता सुनाते-सुनाते मुड़कर उन्हें नहीं देखती थी क्योंकि उन्होंने मना कर रखा था। बीच-बीच में वे खुद जगह-जगह प्रशंसा करते जाते जैसे मुझे आसरा दे रहे हों। 'तुम पढ़ो—मैं तुम्हारे साथ हूं। तुम अपनी कविता के सहारे चलो मैं तुम्हारे साथ हूं' और उनकी वह भारी मर्दानी आवाज़ जैसे मेरी आवाज़ की कमर में हाथ देकर उसे ऊपर कविता की सीढ़ियों पर चढ़ा रही हो।

मगर एक दिन ऐसा लगा जैसे वे बहुत देर से खामोश हैं। मेरी कविता भी लम्बी थी। मुझे लगा जैसे वे हुंकारा नहीं दे रहे हैं। उनकी लम्बी खामोशी से परेशान होकर मुझे ख्याल हुआ शायद वे कविता सुनते-सुनते सो गए हैं या बोर हो रहे हैं। मैंने ज़रा-सा पलटकर जो उन्हें देखा तो वे वहीं बैठे थे उसी सोफे पर, उसी भाव में, आंखें खुली मगर मेरे चेहरे में डूबी हुई, खोई हुई—उनका समूचा सरापा इस वक्त मेरी आवाज़ की पहुंच से बहुत दूर कहीं जा चुका था।

मैंने जल्दी से अपना पूरा चेहरा उनकी तरफ पलट दिया और कुछ कहने ही वाली थी कि उनकी रुकी, ठहरी, निश्चल-सी बड़ी-बड़ी पुतलियों में हलचल-सी पैदा हुई। अचानक वे खोई हुई मानो पानी के नीचे बहते हुए स्वप्नों को खोजनेवाली नज़रें उभरकर ऊपर आ गईं। वे चौंक गए और आश्चर्य से इस तरह मेरी तरफ देखने लगे जैसे अपने सामने किसी अजनबी को देख रहे हों। पहली बार।

"कहां थे ?" मैंने तनिक रुष्ट भाव से कहा, "कविता नहीं सुन रहे हो ?"

"डार्लिंग···" वे अपनी सुपरिचित मुस्कराहट होंठों पर लाते हुए बोले, "मैं तुम्हें देख रहा था। तुम्हारी यह छवि मुझे बहुत पसन्द है, बहुत ही पसन्द है···।"

वे अपनी जगह से उठकर मुझे चूमने लगे।

एक दिन मैंने एक तजुर्बा किया। उस रोज़ मैं काटेज में अकेली थी, वे नीचे याट क्लब में पोलिटिकल डिपार्टमेंट के किसी अंग्रेज़ अफसर से मिलने चले गए थे। ऊदे बादल घिरकर आए थे, चारों तरफ एक भूरा-सा अंधेरा छा रहा था। उस वक्त सहसा मुझे एक ख्याल आया। मैंने ड्राइंग रूम में घुसकर सारी खिड़कियां बन्द कर दीं, सारे परदे गिरा दिए और जब ड्राइंग रूम में लगभग रात का-सा अंधेरा हो गया तो अपने सर के ऊपर सोफे के पीछे वही नीले कांचवाला फानूस जलाया फिर मैंने अपनी पुरानी बूढ़ी खिलाई अमनचैन को ड्राइंग रूम में बुलाया और उसे उसी तरह, उसी जगह, उसी कोण पर, उसी कुर्सी पर बिठाया

जहां कविता सुनते वक्त कुंवरजी बैठते थे। "अमनचैन ! सुन ले कान खोल के, ध्यान देके मेरी बात सुन···मैं वहां बैठती हूं उस सोफे पर, तेरी ओर से लगभग पीठ करके और कविता पढ़ती हूं और तू यहां बैठ के मुझे देख और मुझे बता कि क्या मैं वास्तव में इस स्थान से बहुत सुंदर जान पड़ती हूं।"

अमनचैन को मेरी इस विचित्र-सी इच्छा पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मुंह ही मुंह में बड़बड़ाते हुए कहा, "आप तो हर तरह से सुन्दर लगती हैं रानीजी।"

मैंने कहा, "अमनचैन, वक-वक न कर, बस वहीं बैठ जा जहां मैं तुम्हें बिठाती हूं और मैं उस सोफे पर बैठकर पढ़ती हूं और तेरी तरफ इतनी पीठ करके बैठूंगी कि तुझे ये लटें और कान की लौ और चेहरे का बस इतना ही हिस्सा दाईं तरफ से नज़र आएगा—फिर जब मैं कविता पढ़ने लगूंगी तो देखकर बताओ।"

अमनचैन कुंवरजी की जगह बैठ गई, उसी कोण से। मैं अपने सोफे पर बैठी। मैंने अपने सर के ऊपर नीले बिल्लौरवाले फानूस को ठीक जगह पर रखा और कागज़ हाथ में लेके अपने कोण पर बैठ गई और उससे पूछा—"अमनचैन, मैं ठीक हूं क्या ?"

"नहीं", अमनचैन बोली, "थोड़ा-सा इधर घूम जाओ बिटिया।"

"अब ?"

"थोड़ा और।"

"अब···?"

"हां, बस-बस, ठीक है।"

मैंने कागज़ खोलकर सर को तनिक-सा झुकाकर बिल्कुल उसी हाव-भाव में कविता पढ़नी शुरू की जिस तरह कुंवरजी मुझे देखने के अभ्यस्त थे।

अचानक अमनचैन ने "हाय!" कहकर दोनों हाथ अपने सीने पर रख लिए।

मैं तेज़ी से पलटकर उसकी तरफ देखने लगी, "क्या बात है?" मैंने पूछा।

"हाय! बिल्कुल उर्मिला लगती हो," अमनचैन हांफती हुई बोली।

उस रात मैंने कुंवरजी को कविता नहीं सुनाई। खाने की मेज़ से उठते ही मैंने सरदर्द का बहाना कर दिया और जाके सीधे अपने बिस्तर पर पड़ गई। कुंवरजी काफी रूम से काफी पीकर आए। उन्होंने मुझे अपनी बांहों में लेना चाहा मगर मैंने इन्कार कर दिया और लिहाफ अच्छी तरह अपने चारों तरफ लपेटकर पड़ गई।

कुंवरजी कुछ देर तक तो जागते रहे, करवट बदलते रहे, लेम्प जलाकर रंगीन चित्रोंवाले मैग्ज़ीन देखते रहे फिर बत्ती बुझाकर सो गए।

कमरे में अंधेरा छा गया। आज हवा तेज़ थी। बादल की गरज भी थी और कभी-कभी खिड़कियों पर पड़नेवाली तेज़ बारिश की बौछार ऐसी लगती थी जैसे कोई मेरे गालों पर तड़ातड़ तमाचे मार रहा हो।

अब मुझे क्या मालूम था कि उर्मिला को मारकर भी

मैं खुद अपने अन्दर की उर्मिला को ज़िंदा रखूंगी। वह खुद मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे ही सरोपे में कहीं न कहीं छिपकर ज़िंदा रहेगी। कभी मेरे भावों के किसी कोण में, कभी मेरी चाल की किसी अदा में, कभी मेरी आवाज़ के किसी स्वर में—अर्थात् कोई मुझमें किसी और को देखेगा और मेरी आवाज़ को सुनकर किसी दूसरे की आवाज़ को याद करेगा और मुझे अपनी बांहों में लेकर किसी और से प्यार करेगा? ऐसे भयानक नरक की तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी। मैंने समझा था, मैंने देवलगांव को पा लिया है। आज मालूम हुआ कि देवल मुझसे आज भी उतनी ही दूर है जितना पहले दिन था और मेरी हालत तो उस बिरहन नदी की-सी है जो देवल से बहुत दूर उसके चरणों के गिर्द चक्कर काटती है और सर पटककर वहीं रह जाती है। अच्छा—अगर ऐसा है तो ऐसा ही ठीक है कुंवरराज। तुम मेरी बांहों में प्रेमी की तरह नहीं आओगे तो मैं तुम्हें अपनी बांहों में कैदी बना के रखूंगी मगर तुम मेरे जीते जी मेरी बांहों के चक्रव्यूह से कभी आज़ाद न होगे। मेरा भी यही फैसला है। एक दिन कैदी भी जेल की दीवारों से परिचित हो जाते हैं। एक दिन तुम भी मुझसे परिचित हो जाओगे और जब तुम्हें मेरी आदत पड़ जाएगी तो शायद प्रेम भी हो जाएगा। कुंवरराज, मैं बहुत मज़बूत औरत हूं। जो तमाचे तुम मेरे गालों पर मार रहे हो उनसे मैं रोऊंगी नहीं, कुंवरराज, मैं तुम्हें जीत कर रहूंगी।"

इतना कहकर रानीजी चुप हो गईं। कमरे में एक लम्बा सन्नाटा छा गया।

९

मैंने पूछा, "मगर क्या एक बार भी उन्हें शक नहीं हुआ आपपर···उर्मिलावाली घटना को लेकर···" मैंने उनकी तरफ देखते हुए बात आधी ही छोड़ दी।

"नहीं···" रानीजी ने जवाब दिया, "मैं खुद इस विषय में जानने के लिए बहुत बेचैन रहती थी। और शुरू के कितने ही महीने बल्कि कई वर्ष मेरे दिल में यह शक होता रहा जैसे उन्हें मालूम है। जैसे वे कुछ जानते हैं। मगर नहीं, मेरा वहम ग़लत था। उन्हें बिल्कुल कुछ मालूम न था कोई शुबहा न था। कभी किसी तुच्छ से तुच्छ भाव से भी उन्होंने यह प्रकट नहीं किया कि उन्हें मेरे बारे में किसी प्रकार की शंका है। हां, अगर शादी से पहले मैंने कभी उनसे प्रेम-प्रदर्शन किया होता, मेरे और उनके बीच कोई एक ऐसी नज़र भी गुज़री होती जिसमें हम दोनों का वह सामीप्य शामिल होता जो एक दूसरे को प्रेम के निकट ले जाता है तो सम्भव है उनके मन में शक की छाया-सी गुज़रती। पर यहां शक करने के लिए कुछ भी न था।

"और दुनिया···?" मैंने पूछा।

"दुनिया भी कैसे शुबहा कर सकती थी? मैं बड़ी

बहन थी। राज-पाट की उचित अधिकारिणी। वह मेरी छोटी बहन थी। देखा जाए तो कायदे से उसे मेरे विरुद्ध साज़िश करनी चाहिए थी। इसलिए दुनिया की नज़रों में मैं सर्वथा निर्दोष थी। फिर मैं उसे कितना चाहती थी, यह भी दुनिया जानती थी। किस तरह वह मेरे रास्ते का रोड़ा बनी पड़ी थी इसका दुनिया को क्या खुद उर्मिला को कोई अन्दाज़ा नहीं था और उसे अपने रास्ते से हटा देने का मैंने कोई प्रोग्राम नहीं बनाया था। उसे धक्का देने से पहले मैं खुद नहीं जानती थी कि मैं ऐसा करूंगी। वह तो एक क्षणिक आवेश-भर था।

"हम छः महीने हरगांव में रहते थे छः महीने धनगांव में, मगर हम कहीं भी हों उर्मिला की बरसी मनाने के लिए हम ज़रूर धनगांव की गढ़ी में आ जाते और तुंग के उसी पुराने पेड़ के नीचे कुछ घण्टे उसकी याद में बिताते।"

"कुछ अजीब-सा नहीं लगता था ?" मैंने पूछा।

"शुरू-शुरू में लगता था। डरती थी अपनी किसी हरकत से रहस्य न खोल दूं मगर मैं पक्के इरादोंवाली औरत हूं। मैं न झुक सकती हूं न टूट सकती हूं। मुझे अपने पर पूरा-पूरा काबू है और हर साल में कुछ घण्टे ही तो होते थे, नहीं तो हम दोनों उस पाईं बाग में जाने से कतराते थे।

"उर्मिला आपको कभी ख्वाब में आई ?"

"नहीं, आज तक नहीं आई।" रानीजी पूरे भरोसे से बोलीं, "मुझे ख्वाब ही नहीं आते।"

"अजीब बात है।"

"हां, है तो अजीब," वे बोलीं, "मगर सच तो यही है कि जब से मैंने होश संभाला है कोई ख्वाब नहीं देखा। साफ गहरी नींद आती है।"

"रात के अंधेरे में, उसके सूने और अकेलेपन में आपने कभी ऐसा अनुभव नहीं किया जैसे उर्मिला आपके पीछे खड़ी है। गहरी-गहरी सांसें ले रही है या अंधेरे में अपनी जलती हुई आंखों से आपको घूर रही है?"

उसने धीरे से इन्कार में सर हिला दिया और धीरे से मुस्कराकर कहने लगी, "डाक्टर घोष। मैं वहमी औरत नहीं हूं, मुझे ख्वाब नहीं आते। मैं अंधेरे से नहीं डरती, मैं रात-भर अकेली जंगल में मचान पर रह सकती हूं। मेरे हाथ का निशाना कभी खाली नहीं जाता। मेरा दिल बहुत मज़बूत है।"

मैं कुछ देर उन्हें ध्यान से देखता रहा। उनकी गहरी हरी आंखें किसी रहस्यपूर्ण सागर के समान अथाह थीं। उठती जवानी में यह औरत बहुत ही खतरनाक और खूबसूरत रही होगी। इन आंखों में आदमी डूब सकता है।

मैंने कहा, "अगर आज्ञा हो तो एक सिगार सुलगा लूं, मैं इतनी देर सिगार के बिना नहीं बैठ सकता।"

मैं सिगार सुलगाने के बाद फिर एकाग्रचित्त हो गया। वे मेरे चेहरे की उलझन को देखकर बोलीं, "सुनने से पहले पूछना चाहते हो शायद।"

मैंने सिगार के दो-तीन कश जल्दी-जल्दी से लिए और आंखें ऐश-ट्रे में झुकाकर बोला, "समझ में नहीं आता कि

कैसे कोई अजीब बात नहीं हुई। कभी तो कुछ ज़रूर हुआ होगा। हत्या चाहे जाती हो या लड़ाई के मैदान में, हमेशा कहीं न कहीं अपना निशान छोड़ जाती है और छोड़ती रहती है और अपने अस्तित्व का सबूत देती रहती है। हर हत्या का अपना एक जीवित और स्वचालित अस्तित्व होता है। हत्यारे और मरनेवाले से अलग उसका अपना एक अस्तित्व होता है। हत्या हमेशा बोलती है और उसे कभी मौत के घाट नहीं उतारा जा सकता और मारनेवाले व मरनेवाले के बाद भी हत्या जीवित रहती है। वह जगह बोलती है जहां हत्या हुई थी, वह हवा कराहती है जिसके वातावरण में किसीका गला घोंटा गया था। खून छोड़ने के बाद भी खंजर की ज़बान हांपती है।"

"तुम कितनी भयानक बातें करते हो, डाक्टर।"

वह रुक-रुककर बोली, मैंने देखा उसका चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था। लगभग सफेद हो चला था। गले की नसें खिच आई थीं। मैं चुप रहा। फिर मेरे देखते-देखते ही उसने अपनी तबियत पर कंट्रोल कर लिया। वास्तव में बड़ी पक्के इरादेवाली औरत थी। मैं देख सकता था उसे अपने-आप पर काबू पाने के लिए कितनी जी-तोड़ कोशिश करनी पड़ रही थी। मैं उसे तोड़ देना चाहता था। मगर वह टूटी नहीं। एक तनिक से समय में ही उसका चेहरा नार्मल दिखाई देने लगा। उसकी आवाज़ भी असली हालत में वापस आ गई। वह कहने लगी—

"बीस बरस का वैवाहिक—जीवन एक युग होता है

डाक्टर घोष ! ये बीस बरस हमारे हंसी-खुशी में बीते। कभी कोई झगड़ा एक-दूसरे से नहीं हुआ। मैं वह दैविक प्रेम तो प्राप्त नहीं कर सकती थी जो उन्होंने उर्मिला को दिया था। हां, फिर भी एक गहरी समझ, सहयोग, सहवास और शरीर का मोहक प्रेम—बहुत कुछ दिया उन्होंने। बीस बरस हम लोग साथ रहे, बीस बरस साथ घूमे। यूरोप घूमे, दुनिया घूमे, मान-मर्यादा, दौलत-हुकूमत सब कुछ हमारे पास था। कभी किसी चीज़ की कमी नहीं रही। धीरे-धीरे मैं भूल गई कि उर्मिला नाम की मेरी कोई बहन भी थी। धीरे-धीरे वे भी शायद भूल गए होंगे। ऐसा उनके बर्ताव से हमेशा मैंने समझा। मगर इन बीस बरसों में एक अजीब बात ज़रूर हुई। इन बीस सालों में मेरे पांच बच्चे हुए; और पांचों के पांचों मर गए।"

मैंने चौंककर रानीजी की तरफ देखा, मगर उस औरत का चेहरा उस वक्त एक संपूर्ण नकाब था।

'बड़ी सफल अभिनेत्री है यह औरत' मैंने अपने दिल में सोचा और यह सोचकर मेरे दिल में एक ठण्डी झुरझुरी-सी दौड़ गई।

"क्या पांचों लड़के थे ?" मैंने पूछा।

"नहीं, पहले चार लड़के हुए, पांचवीं लड़की थी। लड़के तो दो-दो, तीन-तीन साल के होके जाते रहे। मगर लड़की तो डेढ़ बरस की होके मर गई। उसकी शक्ल हूबहू उर्मिला से मिलती थी।"

मैंने फिर चौंककर उसकी तरफ देखा मगर वहां फिर

कुछ न था। बस एक नकाब-भर, और वह कह रही थी—

"कुंवरजी उसे बहुत चाहते थे। हर वक्त उसे उठाए फिरते। जब छः महीने की हो गई तो रोज़ाना अपने साथ बिस्तर पर सुलाते थे। अपने हाथ से उसे नहलाते-धुलाते, कपड़े पहनाते, खाना खिलाते। कभी अपनी नज़रों से ओझल न होने देते। वे दुनिया को भूल गए। अपने-आप को भूल गए, अपने काम भूल गए, मुझे भूल गए। ऐसा लगता था जैसे वे इस बच्ची के लिए सारी दुनिया को त्याग देंगे। मुझे उस बच्ची से नफरत हो गई। ऐसा जान पड़ता था जैसे उर्मिला ने मुझे जलाने के लिए मेरी ही कोख से जन्म लिया है।"

"क्या आप उससे मुहब्बत नहीं करती थीं ?"

"यही तो मुसीबत थी। मैं खुद ही उस बच्ची को वह प्यार न दे सकी जो उससे पहले पैदा होनेवाले चार बच्चों को मैंने दिया था। हो सकता है दे भी देती अगर उसकी सूरत उर्मिला से इतनी न मिलती-जुलती पर जैसे-जैसे मेरी बच्ची की सूरत निखरती जा रही थी मैं उससे डरती जा रही थी। माना कुंवरजी के या दुनिया के सामने मैंने कभी अपने डर को प्रकट नहीं किया था मगर उस बच्ची को देखकर हर समय भय-सा लगने लगा था कि अभी कोई बुरी बात होनेवाली है। अभी कोई बुरी बात होनेवाली है। हर वक्त दिल धक्-धक्-सा करता रहता।

वह बड़ी विचित्र बच्ची थी। एक बार में पुरानी

तस्वीरों का एलबम देख रही थी कि वह भी घिसटते-घिसटते मेरे पास आ गई और तस्वीरें देखने लगी। सहसा सामने उर्मिला की तस्वीर आ गई। मैंने जल्दी से तस्वीर को पलटना चाहा मगर उसने हाथ रख दिया और तोतले स्वर में बोली क्योंकि अब वह डेढ़ साल की हो चुकी थी और थोड़ा-थोड़ा बोलने लगी थी। तस्वीर पर हाथ रखकर मुझसे पूछने लगी—

"कौन ? कौन ?"

मैंने कहा—"मेरी बहन···बहन···।"

"एन ?—एन ?" वह पूछने लगी।

"हां, मेरी बहन।"

वह झुककर तस्वीर पर लेट गई और उर्मिला का मुंह चूमते हुए बोली—

"एन—चू···चू।"

अर्थात् तुम्हारी बहन अच्छी है। जिस चीज़ को अच्छा कहना होता वह उसे "चू चू" कहती थी—मामा चू चू—आया चू चू—गुड़िया चू चू—सब चू चू थे। सिवाय उसके पापा के जो उसके और सिर्फ उसके अपने थे। पापा 'मेले' थे (मेरे) बाकी सब चू चू—बस, पापा मेले···!

बड़ी विचित्र लड़की थी। कभी-कभी बिल्कुल बड़ों की तरह मुझे बुलाती थी। एक बार जाड़े के दिन थे, वे बहुत देर से आए। मैंने देर तक इन्तज़ार करके आखिर खाना खा लिया और फिर बच्ची को लेकर बेड रूम में चली गई। मैं तुम्हें बता चुकी हूं कि वह कुंवरजी के बिस्तर

पर सोती थी। उसके पापा अभी आए न थे मगर उसने मुझसे ज़िद्द की कि मैं उसको उनके बिस्तर पर लिटा दूं। मैंने कहा, "अभी तुम्हारे पापा आए नहीं हैं तुम मेरे बिस्तर पर सो जाओ।" पर वह नहीं मानी, अपने पापा के बिस्तर पर सोने के लिए ज़िद्द करती रही और हाथ-पैर पटककर रोती रही। आखिर थक-हारके मैंने खिलाई से कहा कि उसे उसके पापा के बिस्तर ही पर लिटा दे। जब खिलाई उसे दूसरे बिस्तर पर लिटाकर चली गई तो बच्ची जो दोनों आंखें बन्द किए दम साधे पड़ी थी अचानक आंखें खोलकर शरारत से मेरी तरफ देखकर मुस्कराने लगी और अपनी नन्ही-नन्ही बांहों से अपने पापा के छपरखट पर हाथ फेरकर कहने लगी, "पापा मेले—पापा मेले।"

"हां, हां, पापा तेले—पापा तेले ही भले—तू ही संभाल, मुझे क्या करना है तेरे पापा को लेकर।"

"मां—पापा मेले।" वह अर्थपूर्ण नज़रों से मेरी तरफ देखकर बोली और इतना कहकर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी। डाक्टर घोष, मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि उस वक्त उस डेढ़ साल की बच्ची की वे नज़रें कितनी पुरानी और अर्थपूर्ण थीं। मुझे ऐसा लगा जैसे उर्मिला मुझे चैलेंज दे रही है—सीधी-सीधी मेरी हंसी उड़ा रही है। इस बच्ची की हंसी में कैसी घोर घृणा थी मेरे लिए···और इस हंसी की गूंज बिल्कुल उर्मिला की हंसी जैसी थी।"

"यह आपका वहम था," मैंने रानीजी से कहा—

"आपकी सीमा से बढ़ी हुई शंका ने उस अबोध बच्ची की नज़रों में वह सब कुछ पढ़ लिया जो वहां था ही नहीं।"

"नहीं, ऐसा नहीं है," रानीजी विश्वास से बोलीं, "मैं वहमों में नहीं पड़ती लेकिन नज़रों का मतलब भी खूब जानती हूं। जैसे-जैसे वह बड़ी हो रही थी मेरी हार्दिक उलझनें बढ़ रही थीं, बड़ी होकर यह क्या करेगी, किस तरह मुझसे बदला लेगी। अब यही चिंता मुझे दिन-रात खाए जा रही थी। एक तो उसका मेरी कोख से पैदा होना ही मेरे जी का जलापा बना हुआ था और फिर उसको पालना और उसको अपनी बच्ची कहना और उससे प्यार करने की कोशिश भी करना, मेरे लिए ये सब बातें कैसी वेदना का कारण थीं। मैं तुम्हें बता नहीं सकती और मेरी समझ में नहीं आता था कि मैं उस बच्ची का क्या करूं? इतने में एक ऐसी अजीब घटना हुई जिसने मुझे शीघ्र ही फैसला करने पर मजबूर कर दिया।"

"क्या हुआ?"

"कुंवरजी को फ्लू हो गया। फ्लू तुम जानते हो छूत का मर्ज़ है। बच्चों में बहुत जल्दी फैला करता है। कुंवरजी हर रोज़ बच्ची को अपने साथ सुलाते थे। आज कहने लगे, "उसे तुम अपने साथ सुला लो।" मैंने कहा, "खिलाई उसे बच्चों के कमरे में सुला देगी, खुद भी वहीं सो जाएगी।" मगर वे नहीं माने ज़िद करते रहे कि मैं ही उसे अपने साथ सुलाऊं।

मुझे मालूम था कुंवरजी को छोड़कर वह किसी तरह मेरे साथ सोने को तैयार न होगी इसीलिए मैं मना कर रही थी मगर आखिर को मां होकर कब तक इन्कार करती— बच्ची को अपने साथ सुलाने पर राज़ी हो गई मगर अब वही हुआ जिसका मुझे डर था। बच्ची किसी तरह रात को कुंवरजी से अलग होने पर तैयार न थी। बहुत रोई, बहुत रोई, बहुत ऊधम मचाया उसने। जब मैंने धर के तमाचा दिया तो सहमकर मेरे साथ सोने पर तैयार हो गई। देर तक मेरे बिस्तर पर लेटी सिसकती रही। आखिर मेरे सीने से लगकर सो गई।

फिर ऐसा हुआ कि आधी रात के वक्त मुझे अपना दम घुटता-सा जान पड़ा जैसे किसीने मेरे गले में फंदा डाल दिया हो और अब उसे कसकर मेरा गला घोंट रहा हो। मैं हड़बड़ाकर जागी और जब मेरी आंख खुली तो कमरे में पूरा अंधेरा था और मेरे पलंग के आसपास कोई न था मगर मेरा दम था कि बराबर घुटा जा रहा था। सांस बड़ी मुश्किल से आ रही थी। अचानक मेरा हाथ मेरी गरदन पर गया और मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे गले में पड़ा हुआ मेरे सुहाग का मंगलसूत्र, जो हर वक्त मेरे गले का हार बनकर पड़ा रहता था, मेरी गरदन के चारों ओर बड़ी जोर से कस दिया गया है, या किसीने कस दिया है। मैंने दूसरे हाथ से फौरन रोशनी की तो देखा कि बच्ची बेसुध मेरे सीने से लगी सो रही है। उसका एक हाथ मेरे सीने पर है मगर वह दूसरे हाथ से मंगलसूत्र की सुनहरी ज़ंजीर को

गरदन के चारों ओर कस रही है। यह कम्बख्त मुर्दार उर्मिला क्या सचमुच इस बच्चो की शक्ल में मेरी जान लेने को आई है ! मैंने बड़ी मुश्किल से उसके हाथ से अपने मंगलसूत्र को अलग किया। इस छोटी बच्ची की उंगलियों की कैसी भयानक पकड़ थी। किसी तरह वह इस मंगलसूत्र को अपनी अंगुलियों से अलग करने पर तैयार न थी बल्कि उसे और कसे जा रही थी। मैंने अपने हाथ के एक ज़ोरदार झटके से जब मंगलसूत्र को उसके हाथों से अलग किया तो अचानक वह जाग उठी और चीख-चीखकर रोने लगी। इतनी रोई, इतनी रोई कि कुंवरजी दूसरे कमरे से भागे-भागे आए और फ्लू के होते हुए भी अपनी लड़की को उठाकर अपने बिस्तर पर ले गए। मैंने इतमीनान का सांस लिया। कम्बख्त ने आज तो मेरी जान ही ले ली थी।"

"डेढ़ साल की बच्ची आपकी जान कैसे ले सकती थी, रानी साहबा, वह तो बच्ची का हाथ सोते में आपके मंगलसूत्र पर पड़ गया होगा और नींद में उलझता गया होगा। ऐसी साधारण स्वाभाविक-सी बात को आप इतना रहस्यपूर्ण रंग दे रही हैं।"

"अगर यही घटना इसी तरह आपके सामने आती तो आप हर्गिज़ यह न कहते। इस घटना ने, संयोग ने, किस्से ने, कुछ भी कहो मुझे सचेत कर दिया। मुझे अच्छी तरह से जता दिया कि आनेवाले रात व दिन में यह लड़की क्या रंग लाएगी। अभी से एक तरह से उसने कुंवरजी को

मुझसे छीन लिया था। जो काम उर्मिला मेरी बहन बनकर न कर सकी थी वह मरने के बाद उसने मेरी बच्ची बनकर पूरा कर लिया था।"

मैंने अधिक बहस में उलझना बेकार समझकर खामोशी साध ली। रानीजी की आंखें बन्द थीं और होंठ सख्ती से अन्दर को भिंचे हुए थे जैसे उन्हें जो कुछ कहना है वे उसे कहना नहीं चाहतीं—या कहना चाहती हैं तो उसके लिए उन्हें शब्द नहीं मिलते और अगर शब्द मिलते हैं तो कदाचित् स्वर नहीं मिलता।

"फिर ?" मैंने पूछा।

"फिर—वह मर गई।"

१०

रानीजी ने बड़े ठंडे और जंचे-तुले स्वर में कहा। मैं चौंककर उसके चेहरे की तरफ देखने लगा। कैसी गज़ब की औरत है यह। उसने इन शब्दों को इस तरह कहने के लिए अपने मन पर कितना बड़ा जब्र किया होगा और उसके लिए कितना बड़ा आत्मसाहस प्राप्त किया होगा। कोई साधारण स्त्री उन शब्दों को इस तरह से नहीं कह सकती थी। लावा जब कई बार खौल-खौलकर मरता है तब एक चट्टान तैयार होती है।

"कैसे मर गई ?" मेरे मुंह से निकला।

"कैसे मर गई ? जैसे बच्चे मरते हैं ! दो दिन बुखार होता है, तीसरे दिन दम तोड़ देते हैं। बच्चे तो फूल की तरह कोमल होते हैं, उसे कुंवरजी से फ्लू हो गया था।"

"कुंवरजी उस वक्त कहां थे ?"

"कुंवरजी बच्ची को मेरी रक्षा में देके गए थे ठीक-ठाक। वे न जाते और अगर जाते तो बच्ची को साथ लेकर जाते। मगर बात ही कुछ ऐसी आन पड़ी थी। उनके चाचाजी जो खुद एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार थे बहुत बीमार पड़े थे और उन्होंने सवार भेजकर कुंवरजी को फौरन बुलाया था। उन्हें जाना पड़ा। पहले तो वे बहुत आगा-पीछा करते रहे, न जाने के लिए बहाने बनाते रहे, मगर आखिर मेरे समझाने-बुझाने पर ऊपरी मन से चले गए। उनके जाते ही बच्ची की हालत बिगड़ने लगी। दो दिन तेज़ बुखार रहा, तीसरे दिन वह मर गई। जब वह वापस आए तो दुःख से आधे पागल-से हो गए। उस वक्त मुझे पहली बार शुबहा ही नहीं विश्वास हो गया कि वे उर्मिला को कभी नहीं भूले थे। कभी भूल भी नहीं सकेंगे। मेरी हर चेष्टा व्यर्थ थी।"

वह चुप हो गई मगर उसका सारा शरीर कांप रहा था, किसी अंदरूनी भूकम्प से हिल रहा था। वह देर तक चुप रही और देर तक मेरा ध्यान अपने सिगार पर रहा और मैं कुछ नहीं बोला, क्योंकि मैं कहानी सुननेवाला था। मैं कह ही क्या सकता था ?

बहुत देर के बाद वह बोली, "अब वक्त क्या होगा ?"

मैंने घड़ी देखकर कहा, "छः बजने में आधा घंटा बाकी है।"

"वक्त करीब आ रहा है।" वह बड़े रहस्यमय स्वर में बोली।

"काहे का ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"अभी थोड़ी देर में तुम सब जान जाओगे," वह मुझे ढारस बंधाती हुई बोली, "जल्दी मत करो, सब जान लोगे। अब मैं अपनी कहानी के अन्तिम भाग पर पहुंच रही हूं।"

"आगे सुनने से पहले एक बात पूछ लूं ? वह लड़की खुद मरी थी या मारी गई थी ?"

सहसा उसने अपने दोनों हाथ उठाकर अपने सीने पर रख लिए। कुछ पलों के लिए वह इस तरह कांपी जैसे तूफान के घेरे में आया हुआ पत्ता कांपता है। फिर अचानक वह शांत हो गई। बड़े जंचे-तुले स्वर में वह रुक-रुककर एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहने लगी—

"मैं तुमसे कह चुकी हूं—मैं न झुक सकती हूं न टूट सकती हूं।

बच्ची के मरने के बाद थोड़े दिन तक कुंवरजी पागल-से रहे फिर धीरे-धीरे उन्होंने अपने-आप को संभाल लिया। वे फिर अपने कामों में व्यस्त रहने लगे। पहले की तरह मेरी पूछ-गछ करने लगे। उन्होंने हर उस परिवर्तन को मिटा डाला जो पिछले डेढ़ वर्ष में बच्ची का क्षणिक-जीवन उनके लिए लाया था। मगर इतना मैंने ज़रूर अनु-

भव किया जैसे वे बुझ-से गए हैं, गायब-से रहने लगे हैं। संसार के सारे मनोरंजन, घरेलू काम-काज और मेरे लिए अपार प्रेम के होते हुए अंदर ही अंदर कहीं गुम रहने लगे। मैं बहुत सिटपिटाई। तरह-तरह की कोशिशों से मैंने उनका दिल लगाना चाहा, मगर हर बात में उनकी दिलचस्पी ऊपरी थी। मैं तुमसे कहती हूं कि हज़ार बार दुनियादार होने के बावजूद वे बहुत सीधे आदमी थे। भरोसा करना उनका स्वभाव था और शंका करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। मगर पहली बार मैंने देखा कि उनकी साफ, उजली नज़रें मेरी तरफ देखते ही अब धुआं-धुआं-सी होने लगी थीं। एक विचित्र, व्याकुल, अधीर, खौलता हुआ गदलापन उनमें आ जाता था और वे जल्दी से उन नज़रों को छिपाने के लिए अपनी आंखें झुका लेते थे या इधर-उधर देखने लगते थे मगर मैं उनकी मानसिक स्थिति से बेसुध नहीं थी और उनकी ओर से चिन्तित रहने लगी थी।

लड़की की मौत के बाद कुंवरराज में गहरी तब्दीली आ गई। उनका स्वभाव एकांतप्रिय होता चला गया। वे अकेले रहने को दूसरे के साथ रहने से अच्छा समझने लगे। इससे पहले वे खासे प्रफुल्ल थे। उन्हें लोगों के साथ चुहल करना, शिकार पर जाना, रात गए देर तक बैठक जमाना—अर्थात् बेफिक्र रईसों के सारे काम उन्हें बहुत प्रिय थे। एक-एक करके वे सारी आदतें छोड़ते गए और लोगों से कटकर अकेले होते गए। राजदरबार के कामों में ढील डालने लगे। वाद-विवाद के समय बहुधा चुप रहते। ऐसा लगता

था जैसे बहुत-सी बातों से उनकी दिलचस्पी एकदम गायब हो गई है।

इससे पहले हम दोनों दिन-भर साथ रहा करते थे। वक्त का बड़ा हिस्सा इकट्ठे गुज़रता था। ज़नाने में भी बहुत आते थे। अब दिन-भर नहीं आते थे। धीरे-धीरे रात को भी देर से आने लगे। कुछ अजीब-सा हाल हो गया था उनका। बात करो तो आधी बात का जवाब देते थे, आधी गोल कर जाते थे। ज्यादा सवाल करो तो चुप हो जाते। कोई बहस छेड़ो तो देखने में भाग लेते हुए अन्दर ही अन्दर कहीं गायब हो जाते। बहुत देर के बाद मुझे पता चलता कि मैं बेकार की झख मार रही थी, वे तो सुन ही नहीं रहे थे। इन बातों से तबियत बहुत उलझने-सी लगी थी।

फिर इकट्ठे तीन दिन और तीन रातें वे ज़नाने में नहीं आए। मैं बहुत परेशान हो गई और तीन दिन के बाद जब उन्हें देखा तो और भी परेशान हो गई। दाढ़ी बढ़ी हुई, माथे पर झुर्रियां, चेहरा सोच में डूबा हुआ। ऐसा लगता था जैसे तीन दिन से न नहाए हैं न कपड़े बदले हैं।

"यह क्या हुलिया बना रखा है ?" आखिर मैंने भी इस बात का फैसला करने का इरादा कर लिया।

"क्या ?" वे चौंककर बोले।

"शीशे में अपने को देखिए।"

"देख लिया" वे अधीर होकर बोले, "इस महल के सारे शीशे गलत हैं।"

"गलत हैं ?"

"हां, जो मैं हूं वह ये दिखाते नहीं हैं और जो दिखाते हैं वह मैं नहीं हूं।"

"तो क्या करना चाहिए ?"

"तुम भी शीशा मत देखा करो, इस महल के सारे शीशे झूठ बोलते हैं।"

"तीन दिन तक आप ज़नाने में नहीं आए, मुझसे मिले नहीं। लोगों में कानाफूसी शुरू हो गई है।"

"मुझे किसीकी चिन्ता नहीं है।"

"चिन्ता तो मुझे भी नहीं है मगर जीवन ने जो मान हमें दिया है उसके तकाज़े यही कहते हैं कि शिष्टाचार को किसी सूरत में न छोड़िए।"

"और क्या कहते हैं शिष्टाचार ?"

"आपको रोज़ रात को ज़नाने में आना चाहिए। नाश्ते के वक्त नाश्ता, खाने के वक्त खाना और राजदरबार के काम के वक्त राजदरबार के काम करने चाहिए। आपकी एक बीवी भी है।"

"ओह।" कहकर वे हंसे। बढ़ी हुई डाढ़ी में मुझे उनकी हंसी, उनका चेहरा, उनकी सोच में डूबी हुई मुस्कराहट बहुत अच्छी लगी। ऐसा लगा जैसे वे अजनबी हों और आज पहली बार मेरे राजमहल में आए हों। मेरा दिल पहली रात की तरह उनके लिए धक्-धक् करने लगा। मैं लड़ाई करने आई थी, झगड़ने आई थी। मगर उनकी मुस्कराहट देखकर सारा गुस्सा जाता रहा। मैं बरबस

उनके पास चली गई। उन्होंने मुझे अपनी बाहों में ले लिया। उनके बदन से एक विचित्र-सी गंध आ रही थी।

"यह कैसी गंध है ?" मैंने उनकी बांहें, उनका कंधा, उनका सीना जगह-जगह से सूंघकर कहा।

"चंदन की खुशबू है।"

"हां," मैंने फिर सूंघकर कहा, "हां, है तो चंदन ही, पर क्यों ?"

"एक तजुर्बा कर रहा हूं," वे अजीब-से स्वर में बोले।

"क्या तजुर्बा ?"

"जब पूरा हो जाएगा तब बताऊंगा।"

"मैं तो अभी मालूम करना चाहती हूं।"

"अभी तो मुझे खुद भी नहीं मालूम।"

इतना कहकर वे कमरे से बाहर चले गए और फिर चार दिन तक नहीं आये।

११

" इतना मुझे मालूम था कि वे हैं गढ़ी में ही। उन्होंने गढ़ी के सबसे ऊपर और सबसे ऊंचे भाग में, जिसे हम टावर कहते हैं, अपना कमरा बना लिया था और उसीमें अपने-आप को दिन-रात बन्द रखते थे। वहां से रात-दिन अजीब-अजीब-सी आवाज़ें आती थीं। ठका-ठक होती, खटा-

खट होती। कभी आदमी के चलने, कभी धक्का लगने, कभी कील ठोंकने, कभी छीलने की आवाज़ आती। चन्दन की लकड़ियां चुन-चुनकर मंगाई जाती थीं। रंग और ब्रश और खूबसूरत कपड़े, खूबसूरत और रंगीन और तरह-तरह की चीज़ें टावर में दिन-रात पहुंचाई जाती थीं। इतना तो मैंने मालूम कर लिया। मगर समझ में न आया कि वे किस तरह का तजुर्बा कर रहे थे। मैं चाहती तो सीधे ऊपर टावर में जाकर खुद मालूम कर सकती थी। मगर यह ठीक नहीं जान पड़ा। अब वे मुझसे कुछ छिपाना चाहते हैं तो छिपाते रहें, मेरी जूती को पड़ी है जो मालूम करने की कोशिश करूं।

मगर चार दिन के बाद जब वे आए तो पहले से भी ज़्यादा गायब और सोच में डूबे हुए। दाढ़ी पहले से भी बढ़ी हुई थी। सोने के जो कपड़े पहन रखे थे वे भी मैले थे। कालर मुड़ा हुआ था और बदन पर और कपड़ों पर जगह-जगह चन्दन का बुरादा नज़र आ रहा था।

"क्या चन्दन से कोई दवा बना रहे हो ?" मैंने तुनककर पूछा।

"दिल की दवा," वे मुस्कराके बोले।

"किसके दिल की दवा, अपने दिल की या मेरे दिल की ?"

"दोनों के दिल की।"

"रोग कितना जटिल है ?"

"यही तो पता नहीं।" वे आह भरकर बोले।

"तुम्हें हो क्या गया है ?"

"यही तो मालूम करना चाहता हूं।"

"कब तक दाढ़ी बढ़ाते चले जाओगे ?" मैंने पूछा।

कोई जवाब नहीं मिला।

"और रातों को महल से बाहर रहोगे ?"

फिर कोई जवाब नहीं मिला।

"शायद अब तुम मुझसे प्यार नहीं करते।" मेरे दिल के अन्दर की औरत कहीं से बोल पड़ी, मेरे मना करते रहने पर भी बोल पड़ी। इतने बरस हो गए थे हम दोनों की शादी को। प्यार का शब्द एक बिन किए पाप की तरह हमारे बीच कभी न आया था। कभी किसीकी ज़बान से अदा न हुआ था। प्यार जो करते हैं, बोलते नहीं हैं। प्यार तो खून पीता है और चुप रहता है।

बीस बरसों में जो शब्द मेरी ज़बान पर न आया था वह क्यों आज शिकायत बन गया। मैंने अपनी ज़बान दांतों तले दबा ली मगर अब क्या हो सकता है। शब्द तो ज़बान से निकल चुका था और तीर की तरह चल चुका था।

अगर तीर चलकर कहीं उलझ गया तो भी उन्होंने ज़ाहिर न होने दिया। एक पल के लिए उनका मुंह खुला, एक पल के लिए चेहरे पर गुस्से का एक रंग आया दूसरे पल में उन्होंने झुककर मुझसे कहा, बड़ी नर्मी के साथ—

"आज तुम मेरी शेव बना दो।"

वे सोफे पर लेट गए। आंखें बन्द कर लीं। मैं शेव बनाने लगी। यह उनका ढंग था। जब वे मुझसे गहरी

मुहब्बत जताना चाहते तो मुझे शेव बनाने के लिए कहते।

मगर आज तो न सिर्फ यह कि मैंने उनकी शेव बनाई; मैंने उनके कपड़े भी बदल दिए। खुद नहलाया-धुलाया, तौलिये से बदन पोंछा, नये कपड़े पहनाए, एक बच्चे की तरह बिस्तर पर बिठा दिया। उन्होंने भी एक बच्चे की तरह लाड़ करते हुए अपने दोनों हाथ मेरी तरफ बढ़ा दिए और मुझे अपने बाहुपाश में ले लिया और आंखें बन्द करके अपना गाल मेरे गाल से लगा दिया।

"तुम मुझसे प्यार करते वक्त अपनी आंखें क्यों बन्द कर लेते हो ?" मैंने पूछा।

उनका सारा बदन एक पल के लिए निश्चल हो गया, पत्थर की तरह ठोस हो गया। फिर धीरे से जीवन की लहर उनके शरीर में दौड़ने लगी। वे आंखें बन्द किए मेरी ठोड़ी चूमकर बोले, "क्योंकि मैं बन्द आंखों से ज़्यादा साफ देख सकता हूं।"

यह भी झूठ है, मेरे दिल ने कहा, तुम ज़्यादा साफ कैसे देख सकते हो, क्या मुझे या किसी और को—यह 'ज़्यादा साफ' बहुत ही अर्थपूर्ण शब्द है। अर्थात् कब मैं तुम्हें ज़्यादा साफ दिखाई देती हूं। या तुम किसी और को, जो मुझसे ज़्यादा साफ है, देखते हो ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम हकीकत से आंखें बन्द करके किसी स्वप्न में गुम हो जाने की कोशिश करते हो ? बरसों से करते आए हो ? अर्थात् मेरे गालों के स्पर्श में किसी और के कपोलों का स्पर्श खोजते हो। आंखें बन्द करके मेरे होंठ चूमते हो। और उन होंठों

में किसी और के चुम्बन ढूंढते हो। शरीर मेरा हो और आत्मा उर्मिला की हो। यह कैसे हो सकता है? जी चाहता है तुमसे ये प्रश्न पूछ लूं, क्या मेरी बीस बरस की आराधना ने तुम्हारे दिल का कोई घाव नहीं भरा? कितने ही प्रश्न आते हैं मेरे दिल में जिन्हें मैं पूछना चाहती हूं, मगर पूछ नहीं सकती, क्योंकि तुम्हारे और मेरे बीच यही द्वैत तो वर्षों से जड़ पकड़ रहा है और जीवन के इस अथाह सागर में झूठ भी तो एक कोमल पतवार है जिससे हमारा वैवाहिक जीवन चल रहा है। इस पतवार को भी तोड़ दूं तो फिर क्या होगा?

इसलिए मैंने बात ही पलट दी, पूछा, "तुम्हारा तजुर्बा सफल रहा?"

"अभी आज़माकर नहीं देखा।"

"कब आज़माओगे?"

"दो-एक दिन में।"

"किस तरह का तजुर्बा है? मेरा मतलब है, क्या तुम्हें कीमिया बनाने का शौक हुआ है? सुनते हैं, तुम्हारे दादा को भी यही शौक था। वे सोना बनाने का नुस्खा खोजते रहे और इसी शौक में लाखों गंवा दिए। क्या तुम भी मिट्टी से सोना बनाना चाहते हो?"

"नहीं", उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा, "मैं सोने को मिट्टी में बदल देना चाहता हूं।"

"यह क्या पागलपन है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

"बात मेरी समझ में भी इस वक्त नहीं आती है इसलिए मैं ज़्यादा विवरण क्या दूं।"

"सोने को मिट्टी में बदलना, भला ऐसी कीमियागिरी में क्या फायदा है ?"

"फायदा तो मैं देखता ही नहीं," वे बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से बोले, "मैं तो अब यह देखता हूं कि ज़्यादा नुकसान किसमें है।"

"उल्टी-सीधी बातें मत करो," मैं प्यार से उन्हें थपककर बोली, "अब सो जाओ। तुम्हारी आंखों में कई रातों की नींद भरी है।"

थोड़ी देर में मुझे उनके हल्के-हल्के खर्राटों की आवाज़ आई। फिर मैं भी उन्हें थपकते-थपकते सो गई।

तीसरे पहर अचानक मेरी आंख खुल गई—देखा तो बिस्तर खाली था। उठकर इधर-उधर देखा। बाथ रूम देखा, कहीं नज़र न आए, घबराकर बेड रूम के बाहर निकली। पहरेदारनियों से पूछा। उन्होंने बताया,"सरकार, ऊपर टावर में गए हैं।"

इस अंधेरी रात में ऊपर टावर में जाने का क्या मतलब ? क्या हो रहा है ऊपर वहां ? क्या इस कीमियागिरी की आड़ में उन्होंने कोई दूसरी औरत तो नहीं रख ली ? ऊपर टावर में ? अजीब पागल थी मैं जो अब तक उनपर भरोसा करती रही। इसे मामूली-सी बात समझ के टालती गई। मुझे मालूम करना ही होगा।

मैं टावर की तरफ बढ़ने लगी। दो पहरेदारनियों ने

मेरा साथ देना चाहा। मैंने झिड़ककर उन्हें मना कर दिया और अकेली ही मोमबत्ती हाथ में लेकर चली गई।

कई कमरे, दालान, बरामदे मेरे कदमों की चाप से गूंजते गए। रात के सन्नाटे में अपने कदमों की चाप भी अजीब मालूम हो रही थी जैसे कोई दूसरा चल रहा हो या आपके कदम से कदम मिलाए आपके पीछे-पीछे आ रहा हो। टावर चौथी मंज़िल पर है और गढ़ी का सबसे ऊंचा सबसे कठिन मार्गवाला और सबसे अंधेरा भाग है। ऐसा हौलनाक सन्नाटा है यहां कि दिन को जाते हुए भी डर लगता है। पहली तीन मंज़िलों की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते दम फूल गया। यहां कुछ देर के लिए चौथी कोरीडोर में रुकी और हाथ में मोमबत्ती लिए कई मिनट खड़ी रही। यहां आकर सन्नाटा और भी गहरा हो गया था जैसे सारा किला दम साधे खड़ा हो। मेरे सामने टावर का लोहे का दरवाज़ा था जिसके अन्दर चक्कर खाता हुआ, घूमता हुआ, ऊंचा होता हुआ पत्थर का एक ज़ीना था। ज़ीने से हटकर टावर की गोल जैसी दीवारें। जगह-जगह सूराख और उनमें पुराने ढंग की तोपें लगी हुई। और जहां-जहां तोपें लगी हैं वहां ज़ीना तंग कर दिया गया है और तोपों के लिए कटाव में जगह छोड़ दी गई है।

टावर का दरवाज़ा आधा खुला था। मैंने धीरे से उसे खोलकर अंदर झांका—घुप अंधेरा था। सिर्फ जहां पर तोप का मुंह बाहर निकालने के लिए दीवार में सूराख था वहां से आसमान का एक छोटा-सा टुकड़ा नज़र आता था जिसकी अंधियारी में तीन-चार तारे कांप रहे थे।

दरवाज़ा बिना आवाज़ के खुला। मैं अंदर चली गई। कई पलों तक ठिठकी खड़ी रही, फिर होश संभालकर चक्कर लगाती हुई सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगी, बहुत धीरे-धीरे बे-आवाज़ कदमों से। मोमबत्ती की रोशनी ज़ीने के सैकड़ों वर्ष पुराने पत्थरों पर पड़ रही थी जिनका रंग किसी ज़माने में नीला होगा मगर अब काला हो चुका था। हवा रुकी-रुकी-सी थी और वातावरण में अजीब-सी एक सीलन, बदबूदार घुटन महसूस हो रही थी। गोल ज़ीने पर चढ़ते हुए एक और विचित्र-सा प्रभाव होता है। क्योंकि कुछ गज़ के अन्तर पर आगे आनेवाली सीढ़ियां साफ नज़र से ओझल हो जाती हैं इसलिए हर थोड़े गज़ के फासले पर एक नये खतरे का भास होता है जो रात के अंधेरे में रोंगटे खड़े कर देता है। मैं जो जंगल के घटाटोप अंधेरे से नहीं घबराती, इस वक्त इस अजनबी समय में इस टावर पर चढ़ते हुए कुछ विचित्र-सा भय अनुभव कर रही थी। मगर फिर भी मैंने दिल कड़ा किया और हिम्मत करके ऊपर चढ़ती गई, आगे बढ़ती गई। कहीं-कहीं पर रुक-रुककर जलती हुई मोमबत्ती को अपने आंचल की ओट से छिपाकर फिर ऊपर चढ़ने लगती। बाहर की ज़ोरदार हवा उन सूराखों से टकरा-टकराकर जहां तोपों के मुंह रखे हुए थे, अजीब-अजीब-सी आवाज़ें पैदा कर रही थी। हू ! हू !! हू !!! जैसे जंगल की प्रेतात्माएं या टावर के भूत-प्रेत मुझपर हंस रहे हों—मगर कुछ भी हो जाए, मुझे तो अब आगे जाना ही है और ऊपर टावर के कमरे में पहुंच-

कर यह देखना है कि वे इस तीसरे पहर रात में अकेले इस टावर में क्या कर रहे हैं। ज़ीने का आखरी चक्कर अब मेरी नज़रों के सामने था। ऊंची जाती हुई कोई पच्चीस सीढ़ियों के ऊपर टावर का कमरा था जिसके ऊपर तांबे का एक तिब्बती ढंग का फानूस लटका हुआ था और जिसकी पीली, कमज़ोर रोशनी सीढ़ियों के अंधेरे में एक पोला हाला-सा बना रही थी जो वातातरण में कांपता हुआ जान पड़ता था। चारों तरफ अंधेरा और बीच में रोशनी का पीला कमज़ोर-सा हाल अंधेरे के समन्दर में एक कमज़ोर किश्ती के समान कांपता हुआ।

यहां मैं दम लेने के लिए रुकी। टावर का चोबी दरवाज़ा अंदर से बंद था। सीढ़ियों पर कोई नहीं था। फानूस की पीली कांपती हुई-सी रोशनी सन्नाटे की तीव्र ता को और गहन कर रही थी।

मैंने मोमबत्ती को ज़ीने की एक सीढ़ी पर रख दिया, दूसरी सीढ़ी पर खुद बैठकर कपड़े ठीक करने लगी, फिर अपने बाल ठीक किए, फिर मोमवत्ती को उठाने हाथ जो वढ़ाया तो हवा का एक तेज़ झोंका कहीं से आया ओर मोमबत्ती मेरे हाथों में बुझ गई। अंधेरा और भी गहरा हो गया।

फिर बहुत धीरे-धीरे ऊपर टावर का दरवाज़ा खुलने लगा, धीरे-धीरे खुलता गया और एक औरत बाहर निकली, जिसे देखकर मेरी आंखें फटी की फटी रह गईं और मैं उन सीढ़ियों पर बैठी की बैठी रह गई।

यह उर्मिला थी।

१२

" मैं डर और भय से चीख मारने को थी कि जल्दी से मैंने अपने मुंह पर हाथ रख लिया। यह उर्मिला थी—हू-ब-हू उर्मिला—वही चेहरा, वही मुस्कराहट, वही कपड़े, वही कद, वही टावर के दरवाज़े में खड़ी थी और मुस्करा रही थी और उसके खुले बालों में तिब्बती फानूस की रोशनी चमक रही थी। रोशनी बहुत कमज़ोर थी मगर मैंने उसे पहचान लिया।

जैसे मेरे पांव सीढ़ियों में गड़ गए थे, पत्थर के फर्श का एक हिस्सा बन गए थे मेरा सारा बदन सुन्न था। बिल्कुल स्थिर। दिल की धड़कन भी जैसे बंद हो गई हो। मैं बस उसे तके जा रही थी। मगर अपनी जगह से हिल न सकती थी।

फिर जैसे उर्मिला ने मुझे देख लिया और मुझे देखते ही वह मेरी तरफ बढ़ने लगी। सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी, होंठों पर एक अजीब घृणापूर्ण मुस्कराहट थी। धीरे-धीरे वह टावर के घेरेदार अंधेरे में उतरती मेरी तरफ धीरे-धीरे मानो अंधेरे में तैरती हुई बढ़ रही थी। हौले-हौले उसका वह घृणापूर्ण मुस्कराहटवाला चेहरा मेरे पास आता जाता था, आता जाता था। डर और भय से मैंने चीख मारनी चाही। मगर मेरी बोलने की शक्ति ने मेरा साथ छोड़ दिया। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मेरी ज़बान मेरे तालू से चिपक गई है। मैंने उठकर भागना चाहा। मेरे

कदम वहीं गड़े के गड़े रह गए। उसका चेहरा मेरे निकट आता गया। निकट आता गया। सहसा सारा ज़ीना मेरे चारों ओर चक्कर खाने लगा और हू-हू करके लाखों चमगादड़ें मेरे मस्तिष्क में शोर मचाने लगीं। फिर वह चेहरा अचानक अंधेरे में घुल गया और उसके साथ-साथ मेरी भावना भी। फिर मुझे याद नहीं क्या हुआ। शायद मैं उस डर और भय से उन सीढ़ियों पर बैठे-बैठे बेहोश हो **गई थी।**

जब होश में आई तो मैं अपने बिस्तर पर थी और वे गहरे गम्भीर भाव से मुझे देख रहे थे। मुझे होश में आते देखकर उन्होंने शान्ति की एक सांस ली और पीछे हटकर मेरे बिस्तर के पास एक आरामकुर्सी पर लेट गए और एक हाथ अपने सर पर रख लिया, जिससे मैं उनकी आंखें न देख सकती थी।

थोड़ी देर के बाद जब मैं बोलने योग्य हुई तो मैंने पूछा, "वह उर्मिला थी न ?"

वे सर हिलाकर बोले, "नहीं, वह लकड़ी की एक पुतली थी।"

"लकड़ी की पुतली ?"

"हां, तुमसे एक नये तजुर्बे की बात नहीं कर रहा था, सो वह तजुर्बा यही था। मैं ऊपर टावर में शम्भू दादा से लकड़ी के पुतले तैयार करा रहा हूं। सोचा था रामनौमी पर इन पुतलों की सहायता से रामायण का ड्रामा खेलूंगा। नई चीज़ होगी और हमारे इलाके के लिए बेहतरीन। यहां

न तो थियेटर है न सिनेमा। बेचारे गरीब लोगों के मनोरंजन का कोई साधन नहीं है। पुतलियों के खेल हैं पर पुराने ढंग के···। मैंने सोचा, शम्भू दादा की मदद से नये पुतले बनवाकर नये कपड़े और नये साज-सामान से एक नया खेल खेला जाए। मैं तुमसे यह तजुर्बा इसलिए गुप्त रख रहा था कि मैं रामनौमी के अवसर पर अचानक तुम्हें यह खेल दिखाकर चकित कर देता। पर तुम वक्त से पहले आ गईं, रामायण की गुड़िया-कथा देखने से पहले···।"

"पर···पर···" मैंने कहा, "उस पुतली की शक्ल तो हू-ब-हू···हू-ब-हू···।"

"उर्मिला से मिलती है। है न ? हां, ठीक है। वह पुतला लक्ष्मण की पत्नी का था, जिसने अपने पति के बिछुड़ने पर चौदह साल एक बिरहन का जीवन बिताया।" कुंवरजी ध्यान से मेरी तरफ देखते हुए बोले।"

"मेरा ख्याल है उनका तजुर्बा कामयाब रहा," मैंने गौर करते हुए कहा।

"तुम ठीक कहते हो, डाक्टर घोष।" रानीजी अपनी बेचैन उंगलियों को जल्दी-जल्दी एक-दूसरे में गडमड करती हुई बोलीं, "मेरा ख्याल है वह रामायण की गुड़िया-कथा का तो एक बहाना था। वे इस खेल में उर्मिला, मेरी बहन, की शक्ल की एक पूरे कद की पुतली बनाके मेरी परीक्षा लेना चाहते थे। शायद वे मुझे सारी पब्लिक में बेनकाब करना चाहते थे। यह ठीक से मैं नहीं जानती कि वे क्या करना चाहते थे। पर इतना ज़रूर जानती हूं कि उस दिन जब

वे उर्मिला के उस पुतले के पीछे छिपे उसे सीढ़ियों से नीचे उतार रहे थे उस वक्त उन्होंने मुझे देखकर अपने तजुर्बे की परीक्षा का फैसला कर लिया होगा। वह बहुत अच्छा अवसर था उनके लिए और उससे उन्होंने पूरा फायदा उठाया। मुझे अचानक खबरदार किए बिना उन्होंने उस पुतले के ज़रिये उस अपराधी भावना को मेरी आंखों में पढ़ लिया जो अब तक उनकी नज़रों से ओझल थी।"

रानीजी की आंखों में इस वक्त अफसोस की एक गहरी उदासी थी।

"फिर क्या वह रामायण की गुड़िया-कथा का खेल खेला गया ?"

"नहीं, मैंने कैंसिल करा दिया। वह खेल तो एक तरह से खेला ही जा चुका था।"

"और उर्मिला की वह पुतली ?"

"उसे मैंने जलवा दिया।"

"जलवा दिया ?"

" हां, यह कहकर जलवा दिया कि चूंकि मेरी बहन का शव नहीं मिला था इसलिए उसे जलाया भी न जा सका था। इसलिए उसकी भटकी हुई आत्मा को शान्ति देने के लिए मैंने चन्दन की लकड़ी का यह पुतला बनवाया है और अब उसे उर्मिला की वर्षी के रोज़ नियमानुसार अर्थी उठाकर श्मशान घाट में जलाया जाएगा। मेरे इस फैसले को जनता ने बहुत पसन्द किया। उसकी अर्थी के साथ जाते

हुए उन्होंने किसी विशेष दुःख का प्रदर्शन नहीं किया—न अर्थी उठाते वक्त, न श्मशान घाट में जलाते वक्त। वापस आकर हम लोग पुराने नियमानुसार कुछ देर उसी तुंग के पेड़ के नीचे टहलते रहे जिसके पास संगमरमर के चबूतरे से गिरकर उर्मिला की जान गई थी।

टहलते-टहलते अचानक उन्होंने मुझसे पूछा, "जब उर्मिला गिरी थी उस वक्त तुम कहां खड़ी थीं ?"

मैं चौंक गई। आज तक उन्होंने मुझसे यह प्रश्न न पूछा था। बल्कि आज तक इस घटना को लेकर कोई बात-चीत मेरे और उनके बीच न हुई थी। मैं देर तक उनकी तरफ देखती रही, फिर बड़ी मज़बूती से अपनी जगह से चलकर संगमरमर के उस चबूतरे के पास खड़ी हो गई जहां मैं उस रात खड़ी थी जिस रात उर्मिला की शादी कुंवरजी से होनेवाली थी।

"यहां···" मैंने चबूतरे के पास खड़ी होकर बताया।

"और उर्मिला कहां थी ?" उन्होंने मुझसे पूछा।

मैंने चबूतरे पर हाथ रखकर कहा, "यहां।"

"यहां, कहां ? ठीक जगह खड़ी होकर बताओ।"

मैं चबूतरे पर निर्भय और बेधड़क चढ़ गई और उस जगह पर खड़ी हो गई जहां उर्मिला खड़ी थी।

"वे अंगूर के गुच्छे कहां थे ?" उन्होंने पूछा।

"यहां···।" मैंने अपने सर के ऊपर हाथ हिलाते हुए बताया।

"तोड़ के बताओ।"

मैंने अंगूर का एक गुच्छा तोड़कर हाथ में झुलाया।

वे कुछ उदास-से हो गए। जैसे उन्होंने कोई चाल सोची थी जो सफल न हो रही थी। कुछ पलों तक वे चुप रहे फिर अचानक बोले, "तुम यहीं खड़ी रहो, मैं अभी आता हूं।"

मुझे कुछ अजीब-सा लगा, पर मैं खड़ी रही वहीं चबूतरे पर अंगूर का गुच्छा हाथ में झुलाते हुए।

थोड़ी देर के बाद वे अन्दर से बाहर आ गए। उनके हाथ में एक राइफल थी। मैं भौचक्की-सी रह गई। सहसा खून ज़ोर से मेरी नाड़ियों में उछला, फिर थम-सा गया। फिर दिल का उतार-चढ़ाव डूबने-सा लगा।

उन्होंने मेरी तरफ निशाना साधकर कहा, "इसी तरह खड़ी रहो—हाथ में अंगूर का गुच्छा लेकर। बिल्कुल हिलना नहीं। मैं तुमको चेतावनी देता हूं, थोड़ा भी न हिलना।"

"यह क्या मज़ाक है?" मैं चिल्लाई।

"घबराओ मत—मेरा निशाना बहुत अच्छा है। पहले ही फायर में अंगूर का यह गुच्छा तुम्हारे हाथ से छिटककर नीचे खड में गिर जाएगा।"

कुंवर ने निशाना साधा। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं। मुझे पूरा विश्वास था कि वे सब कुछ जानते हैं, मुझसे झूठ बोल रहे हैं और उन्होंने मुझे सज़ा देने के लिए यह चाल चली है। मगर अब मैं निहत्थी थी और दूर-पास कोई नौकर भी मौजूद नहीं था और कुंवर के पास राइफल थी।

भागने से भी क्या फायदा—वे मुझे ज़िंदा न छोड़ेंगे। राइफल की नाल अब मेरे सामने थी। मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

अचानक ज़ोर का एक फायर हुआ। अंगूर का गुच्छा मेरे हाथ से गिरकर दूर नीचे खड में बिखर गया होगा। मैं चबूतरे पर सही-सलामत खड़ी थी।

"देखा मेरा निशाना ?" कुंवर ने राइफल छोड़कर ताली बजाई और मुस्कराकर मुझे दोनों हाथों से चबूतरे से उतार लिया।

दूसरे साल भी यही हुआ।

दूसरे साल भी उन्होंने ऐसा ही किया—तीसरे साल की वर्षी पर भी यही हुआ। पांच साल तक यही होता रहा। वे मुझे चबूतरे पर चढ़ा देते। अंगूर का एक गुच्छा मेरे हाथ में देते, खुद अन्दर राइफल लेने जाते, वापस आकर निशाना साधते। अंगूर का गुच्छा मेरे हाथ से गिर जाता, मैं सही-सलामत खड़ी रह जाती। ये सब कुछ तो होता पर उन पलों में मैं जिस नरक से गुज़रती थी उसका अंदाज़ा कुछ मुझे ही था। उस वक्त, निशाना साधते वक्त, कुंवर की आंखें मानो किसी आन्तरिक कटुता से उबलने लगती थीं। मैं उन आंखों की चमक और गुस्सा और बदला लेने की भावना को सहन न कर सकती थी। पर मुझे इस खेल में भी हारना नहीं था। क्या वे मुझे इस बात की दावत दे रहे थे कि जब वे राइफल लेने अन्दर जाते हैं और जब वे राइफल लेकर वापस आते हैं तो क्या इस बीच के समय में वे मुझे

चबूतरे से नीचे उतरा हुआ पाएंगे या क्या वे यह चाहते हैं कि इस बीच में मैं खुद अपने पाप की भावना के वशीभूत होकर नीचे खड में छलांग लगा दूंगी या जब वे मुझे खेल खत्म हो जाने के बाद चबूतरे से नीचे उतारते हुए अपनी बांहों में लेंगे, मैं उन्हें कांपते हुए, डरते हुए, सिसकते हुए मिलूंगी। ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। हर बार मैंने उन्हें निराश किया। हर साल निराश किया। पर इसमें शक नहीं कि हर साल वह दिन मेरे लिए कयामत का दिन होता था। ऐसा लगता था जैसे हर साल वे इस दिन उस हत्या का मुझसे बदला लेते हैं। ऐसी कटाक्षपूर्ण मुस्कान होती थी उस वक्त उनके चेहरे पर कि मेरा जी चाहता था उनका मुंह नोच लूं। पर मैं कुछ कह न सकती थी। क्योंकि हर खेल के अपने नियम होते हैं और हम लोग जो राज्य करते हैं खेल के नियमों को नहीं तोड़ सकते।

पांचवें साल मैंने कुंवरजी से कहा, "आज आप वहां खड़े रहिए जहां उर्मिला खड़ी थी। जहां पांच साल से मैं खड़ी हो रही हूं—उसी जगह उसी तरह हाथ में अंगूर का गुच्छा लेकर।"

"वह क्यों ?"

"मेरा भी निशाना देखिए, अचूक है।"

कुछ देर तक वे मुझे बड़े ध्यान से देखते रहे। एक अजीब-सी मुस्कराहट उनके चेहरे पर आई। फिर वे मुझसे कुछ कहे बिना चबूतरे की तरफ बढ़ गए। एक पल के लिए उनका हाथ उस जगह पर रुका जहां उर्मिला के कदम रुके

थे, फिर वह हाथ उनके माथे तक चला गया। जैसे उन्होंने बरसों से बिछुड़ी हुई उर्मिला के कदमों की मिट्टी अपने माथे से लगा ली। फिर वे उर्मिला की जगह खड़े हो गए। हाथ बढ़ाकर उन्होंने अंगूर की बेल से ऊदे अंगूरों का एक गुच्छा तोड़ लिया और उसे झुलाते हुए बोले, "लाइए, आपका निशाना भी देखें।"

मैं अन्दर गई, अपनी राइफल लेकर आई, निशाना साधा। वे बड़ा-सा अंगूर का गुच्छा हाथ में लटकाए उर्मिला की जगह खड़े थे। मैंने निशाना बांधकर गोली चलाई। गोली उनके सीने के पार हो गई। पल-भर में उनका बदन दूर नीचे हज़ारों फुट गहरी खड में लड़खड़ाता हुआ गिरता चला गया। और बानगंगा की चंचल लहरों में गुम हो गया।"

१३

रानीजी चुपचाप तकियों के सहारे बिस्तर पर बैठी हुई अपनी रंगीन दुलाई के किनारे से खेल रही थीं।

मैंने कहा, "अखबारों में मैंने इस बात का उल्लेख पढ़ा था। कदाचित् अंग्रेज़ी साम्राज्य ने आपपर मुकद्मा भी चलाया था।"

"हां, मगर मैं बरी हो गई थी। मैंने दो करोड़ रुपये की रिश्वत दी थी।"

"कोई कर्नल थे जो आपके मुकद्दमे की छान-बीन कर रहे थे।"

"हां, कर्नल डी व्हाइड उनका नाम था। उन्होंने दो करोड़ रुपये लेकर मुझे साफ निर्दोष ठहरा दिया।"

वे अपनी रेशमी दुलाई के रंगीन किनारों से अपनी उंगली के नाखून उलझाकर उसके तार निकालने लगीं। मैं सिगार सुलगाकर धुएं के बादल हवा में छोड़ने लगा। इस खामोशी के बीच बांदी आई और फानूस रोशन कर गई। पहाड़ों पर सूरज बहुत जल्द डूबता है। शाम बहुत जल्द गहरी हो जाती है। सन्नाटा बहुत जल्द बढ़ता है। इस वक्त चारों तरफ सन्नाटा इतना बढ़ गया था कि मुझे अपना दम-सा रुकता जान पड़ा।

मैंने पूछा, "आखिरकार आपने इस रहस्य को प्रकट कर देने का निश्चय क्यों किया ?"

वह बोली, "अपनी खुशी से नहीं बता रही हूं, विवश होकर बता रही हूं। कुछ समय से ऐसा लग रहा था कि अगर किसीको बताऊंगी नहीं तो शायद मेरा दम रुक जाएगा। मेरा सीना कट जाएगा। शायद मैं पागल हो जाऊंगी, अपना संतुलन खो बैठूंगी। बैठे-बैठे मुझे चक्कर आने लगते हैं। सारी दुनिया मुझे घूमती हुई दिखाई देती है और फिर चारों तरफ एक गूंज जो मेरे चारों तरफ चक्कर लगाती हुई एक भयानक चिमगादड़ की तरह चीखती-चिल्लाती हुई रात को मेरे इतने पास आ जाती है कि मैं अपने बिस्तर से उठकर बैठ जाती हूं। कानों में उंगलियां दे लेती हूं,

मेरा सारा बदन पसीने में तर हो जाता है। यह दुःख अब मुझसे सहन नहीं होता। मुझे ऐसा लगा जैसे अब मुझे किसी न किसीको बताना ही पड़ेगा और अगर नहीं बताऊंगी तो शायद आप ही आप मैं बक दूंगी। दीवारों से कह दूंगी, नौकरों से कह दूंगी, तुंग के पेड़ से कह दूंगी। शायद चीखती-चिल्लाती हुई अदालत में जाकर सबके सामने कह डालूंगी। अब तो कहना ही पड़ेगा। शायद तुमने ठीक ही कहा, "हत्या का अपना एक अस्तित्व होता है। हत्यारे और मरनेवाले से अलग। और वह एक साये की तरह पीछा करता है और उस वक्त तक ज़िंदा रहता है जब तक सबके सामने उसके अस्तित्व को स्वीकार न कर लिया जाए।"

"मगर आपने इस काम के लिए मुझे क्यों चुना ?"

"क्योंकि दूसरे लोग इस हत्या से सम्बन्धित हो चुके हैं—वे, जो मुझपर शक करते हैं और कुछ करते नहीं। वे, जिन्होंने सुना है और खामोश हैं। वे, जिन्होंने खुशामद की है और रिश्वत ली है। वे जिन्होंने आंखें चुराई हैं और जिन्होंने भूल जाना ठीक समझा। वे सब किसी न किसी तरह इस हत्या में मेरे साझीदार हैं। उनको बताने से क्या फायदा ? वे तो इस हत्या का बोझ किसी न किसी सूरत से अपने कंधे पर लिए फिरते हैं। उनको बताकर मैं क्या करूंगी ? इस काम के लिए मुझे एक बिल्कुल अजनबी की ज़रूरत थी। इसलिए मैंने तुम्हें चुना।"

"धन्यवाद।" मैंने कुर्सी से उठते हुए कहा। "तो अब मैं जाऊं ?"

"नहीं बैठो।" वह आज्ञापूर्ण भाव में तनिक सख्ती से बोली।

"मैं कुर्सी पर बैठ गया।"

उसकी सांस फूल रही थी। चेहरे पर एक रंग आ रहा था और एक जा रहा था। उसने रुक-रुककर मुझसे पूछा, "क्या वक्त है ?"

"छः बजने में दस मिनट हैं, मगर आप अपने बेड रूम में घड़ी क्यों नहीं रखतीं ?"

"रखती थी। मगर मैंने उसे ड्राइंग रूम में लगा दिया है। अभी छः बजने पर तुम उस क्लाक का गेंग ड्राइंग रूम से सुनोगे।"

"क्या इस क्लाक का भी इस कहानी से कुछ सम्बन्ध है ?"

"एक तरह से है, और तुम्हें चुनने की एक वजह यह भी है कि आज मैं अपने निकट एक ऐसा आदमी चाहती हूं जो आधुनिक सभ्यता का हो और विज्ञान से जानकारी रखता हो। मैं भी वहमी औरत नहीं हूं। मैं रहस्यपूर्ण चीज़ों में विश्वास नहीं रखती हूं। मगर इधर कुछ दिनों से जो कुछ इस गढ़ी में हो रहा है वह इतना विचित्र और रहस्यमयी है कि उसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया है कि तुम एक डाक्टर हो, सम्भव है तुम इसका कोई ऐसा विवरण दो जो वहमों से परे हो और मानवीय समझ के निकट हो। जबकि मैं समझती हूं कि अब ऐसा करना भी असम्भव है फिर भी मैं तुमपर भरोसा कर सकती

हूं। हो सकता है, तुम मेरे बचाव की कोई सूरत निकाल सको।"

"बात क्या है ?"

"इधर कुछ दिनों से बड़ी अजीब बातें हो रही हैं। शायद तुम्हें मालूम नहीं कि ड्राइंग रूम में जहां मेरी नज़र के सामने कुंवरराज बहादुरसिंह की तस्वीर लगी है वहां एक हफ्ता पहले तक उर्मिला की तस्वीर लगी थी, जिसे मैं हर रोज़ हार पहनाया करती थी। बरसों से यह मेरा नियम था और इसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। फिर जब कुंवरजी मर गए तो मैंने उनकी भी एक तस्वीर सामने की दीवार पर लगा दी और हर रोज़ उसे भी हार पहनाने लगी।"

मैं मुस्कराए बिना रह न सका। उसने मेरी मुस्कराहट देख ली। मगर कुछ कहा नहीं।

उसने अपनी कहानी जारी रखी, "उर्मिला की तस्वीर के नीचे, बहुत नीचे एक कार्निस है, उस कार्निस पर दो छोटी केबनिट साइज़ की तस्वीरें दो अलग-अलग फ्रेम में जड़ी रखी हैं और बरसों से यहीं पड़ी हैं। एक तस्वीर मेरी है, दूसरी मेरे पति कुंवरराज बहादुरसिंह की। दोनों तस्वीरें बरसों से साथ-साथ कार्निस पर इकट्ठी रखी थीं और उनके ऊपर दीवार पर उर्मिला की बड़ी तस्वीर थी, चांदी के फ्रेम में जड़ी हुई जिसे मैं हर रोज़ हार पहनाया करती थी।

"आज से सात रोज़ पहले एक अजीब बात हुई। जब मैं नियमानुसार उर्मिला की तस्वीर को हार पहनाने गई तो

मैंने देखा कि पुराना हार उर्मिला की तस्वीर से टूटकर नीचे कुंवरराज की तस्वीर के चारों तरफ लिपट चुका है। इसको बहुत-सी बांदियों ने भी देखा और वे आश्चर्य में घिरी रह गईं।"

मैंने कहा, "यह एक संयोग-मात्र है। हार का धागा कमज़ोर होगा, हवा के किसी झोंके से या फ्रेम के दबाव से टूटकर नीचे गिर पड़ा। नीचे कुंवरजी की तस्वीर थी, उसके चारों तरफ लिपट गया। सब बात साफ समझमें आती है।"

" पहले दिन की बात कोई अजीब बात नहीं है। कोई भी इसे संयोग-मात्र खयाल करेगा। मैंने भी यही किया और नियमानुसार किसी भी चिंता या परेशानी या भय प्रकट किए बिना उस पुराने हार को उठवाकर फिंकवा दिया और नया हार उर्मिला की तस्वीर पर चढ़ा दिया।

" मगर दूसरे दिन जब मैं उर्मिला की तस्वीर को हार पहनाने गई तो वह हार भी टूटकर कुंवरराज की तस्वीर पर लिपट चुका था।"

रानीजी ने इतना कहकर मेरी ओर ध्यान से देखा जैसे उन्होंने मुझे चकित कर दिया हो। मैंने इन्कार में सर हिलाकर कहा, "दूसरे दिन की घटना भी एक संयोग लगती है। या किसीकी शरारत है ?"

" मैंने भी ऐसा सोचा था।" रानीजी ने कहा, "और इसीलिए मैंने उसी दिन उर्मिला की तस्वीर को वहां से उतरवाकर सामने की दीवार पर लगवाया जहां कुंवरजी की

तस्वीर थी और कुंवरजी की तस्वीर वहां लगा दो—जहां उर्मिला की तस्वीर थी अर्थात् जहां पर अब वह मुझे दिखाई देती है।"

"फिर क्या हुआ ? क्या तीसरे दिन भी हार टूट कर गिरा ?"

"नहीं···", वह बोली, " मगर उस दिन एक अजीब घटना हुई। शाम के छः बजे मैं इसी बिस्तर पर अकेली लेटी थी। पहले मैंने अपने बेड-रूम के क्लाक के गैंग की आवाज़ सुनी—वह उस दिन तुम्हारी तरफ दाईं ओर की दीवार पर लटका हुआ था जब मैंने वक्त देखने के लिए उसपर नज़र डाली तो मुझे वह क्लाक अजीब-सा दिखाई दिया। उसका डायल ऐसा लगा जैसे किसी भयानक जानवर का चेहरा हो और उसकी सुइयां जैसे दो बड़ी बांहें हों और घंटों के अक्षर जैसे बहुत-सी बड़ी-बड़ी आंखें हों जो पट-पट मेरी ओर प्रश्न-भरे भाव में देख रही हों।

" मैंने घबराकर क्लाक से नज़रें हटा लीं तो मुझे ऐसा लगा जैसे हवा का सन्नाटा बहुत बढ़ गया है। बेड रूम और अधखुले ड्राइंग रूम की रोशनियां एकदम मद्धिम पड़ गई हैं और मैं दूर, सबकी नज़रों से दूर इस कमरे में अकेली कैद कर दी गई हूं। मेरा दम घुटने-सा लगा। मैंने यह कमरा छोड़कर ड्राइंग रूम में जाने का इरादा किया तो मैं अचानक चीख मारकर रह गई। मैंने क्या देखा कि उस दीवार पर जहां कुंवरराज बहादुरसिंह की तस्वीर लगी है उस दीवार पर एक और तस्वीर सरकती हुई चली आ रही है।

रोशनियों और सायों की झिलमिलाती शतरंजी में एक तस्वीर बढ़ती चली आ रही है। बढ़ते-बढ़ते वह तस्वीर कुंवरराज की तस्वीर के साथ लग गई। मैं धक से रह गई। यह उर्मिला की तस्वीर थी। मेरा दिमाग चक्कर खाने लगा। बड़ी मुश्किल से मैंने अपना सर अपने दोनों हाथों में थामकर देखा। वास्तव में उर्मिला की तस्वीर थी जो सामने की दीवार से हटकर किसी रहस्यपूर्ण ढंग से चलती हुई अपनी पुरानी जगह पर आन पहुंची थी। डर और भय से मैंने आंखें बन्द कर लीं। फिर जब आंखें खोलीं तो वह तस्वीर वहीं मौजूद थी और अब मेरी तरफ देखकर एक कटाक्ष-भरी मुस्कराहट से मुस्करा रही थी। फिर मैंने देखा कि उर्मिला तस्वीर के फ्रेम के अन्दर अपनी जगह से सरकने लगी। सरकते-सरकते कुंवरराज की तस्वीर के फ्रेम के पास पहुंच गई। फिर जैसे फ्रेम पिघल गया। और जैसे दोनों तस्वीरें एक हो गईं। अब उर्मिला मेरे पति के पास खड़ी मुस्करा रही थी जो हाथ में राइफल लिए खड़े थे। वे बार-बार एक उंगली उठाकर मेरी तरफ इशारा करती थी और उन्हें अपनी राइफल उठाने की सलाह देती थी। बार-बार सलाह देती थी और वह मुस्कराकर एक हाथ उसकी कमर में डालकर इन्कार करते थे। इन्कार करते थे और उससे प्यार करते थे। मैंने गुस्से में आकर आंखें बन्द कर लीं, लिहाफ अपने ऊपर ओढ़ लिया। थोड़ी देरके बाद जो सर लिहाफ से निकाला तो उर्मिला उसी तरह कुंवरराज की बांहों में लिपटी हुई

थी और वे दोनों मेरी तरफ देख-देखकर हंस रहे थे।"

"ऐसा हो नहीं सकता।" मैंने सख्ती से सर हिलाकर कहा, "ये सब आपकी मनोवेदना का नतीजा है। आप अपना मानसिक संतुलन खो चुकी हैं।"

"जी, मैं कहती हूं यह बिल्कुल सच है, इसीलिए मैंने तुम्हें बुलवाया है। आज तुम अपनी आंखों से देख लोगे। यह कोई एक दिन की घटना नहीं है। पिछले पांच रोज़ से यही हो रहा है। इसी तरह छः बजते हैं, इसी तरह तस्वीर चलती है, कुंवरजी की तस्वीर से लग जाती है, बीच का फ्रेम टूट जाता है, दोनों तस्वीरें एक हो जाती हैं, उर्मिला मेरे पति को इशारे से मुझपर राइफल चलाने के लिए कहती है, वे मुस्कराकर इन्कार करते हैं, दोनों प्रेम-बन्धन में बंध जाते हैं और वह कम्बख्त, वह मुर्दार उर्मिला मेरी आंखों के सामने मुझे जी-जान से जलाती है। पिछले पांच दिनों से यही हो रहा है और आज ऐसा लगता है जैसे कोई बहुत बुरी बात होनेवाली है क्योंकि आज उर्मिला की वर्षी है। आज रह-रहकर मेरा दिल डूब रहा है।"

अचानक ड्राइंग रूम से एक भयानक आवाज़ आई, "डांग"। यह ड्राइंग रूम का क्लाक था। छः बजा रहा था। उसकी भारी गूंजदार, भयानक आवाज़ बेड रूम के अन्दर चारों तरफ गूंज रही थी।

डांग···डांग···डांग।

वास्तव में ऐसा लगा जैसे हमारे चारों तरफ सन्नाटा गहरा हो गया हो। जैसे हमारे चारों तरफ खामोशी का

समन्दर फैल गया हो और हम अकेले एक सुनसान बन्द कमरे में अकेले खड़े हों। एक पल के लिए मुझे भी ऐसा लगा जैसे ड्राइंग रूम और बेड रूम की बत्तियां बहुत धीमी पड़ गई हैं। रोशनी घट गई है, अंधेरा बढ़ गया है।

"डांग !"

इस गहरे सन्नाटे में मैंने रानीजी की तरफ देखा। उनका चेहरा एकदम पीला पड़ गया था। बड़ी-बड़ी गहरी हरी आंखों की पुतलियों में भयानक बर्बरता थी। उनका सारा बदन मानो किसी तेज़ बुखार की जलन से कांप रहा था।

"डांग !"

क्लाक छः बजाकर चुप हो गया। फिर ऐसी खामोशी आई जैसे कयामत से पहले आती है। इस घबराहट में मेरी बांहों के बाल खड़े हो गए और मेरे सारे बदन में च्यूंटिया-सी रेंगने लगीं और मैंने देखा कि रानी की आंखें मानो अपने हलकों से बाहर उबली पड़ रही हैं। किसी भयानक प्रभाव ने उनका चेहरा अपनी लपेट में ले लिया है और एक हाथ अपने गले पर रखे रुकते हुए हलक से कह रही हैं—

"वह देखो···वह देखो···तस्वीर आ रही है।"

मैंने एक पल के लिए दूर बेड रूम के दरवाज़े से परे ड्राइंग रूम की झिलमिलाती रोशनियों और सायों में देखने की कोशिश की फिर मैं चकित होकर रानी का चेहरा देखने लगा जिसकी रूप-रेखाएं मेरे सामने बिगड़ रही थीं। उनकी गहरी हरी पुतलियों में कोई भयानक अनजाना भय नाच

रहा था। उनका दम रुक रहा था, वे बड़ी मुश्किल से कह रही थीं।

"देखो वो दोनों तस्वीरें एक साथ हो गईं। उर्मिला कुंवरराज के पास पहुंच गईं।"

रानीजी के होंठों से कफ निकल रहा था—

" वह उससे राइफल उठाने को कह रही है।

" हे राम···उसने राइफल उठा ली···।"

मैं अचानक अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ ड्राइंग रूम की तरफ जाने लगा। सहसा पीछे से एक ज़ोर की चीख सुनाई दी। यह रानीजी की आवाज़ थी। यह चीख सुनकर मैं ड्राइंग रूम की तरफ जाते-जाते पलट आया और भाग कर रानी के बिस्तर के पास पहुंचा।

रानीजी का शरीर तकियों से नीचे औंधा गिरा पड़ा था। मैंने जल्दी से बदन को उठाकर जो सीधा किया तो सीधी मेरी नज़र उनकी आंखों में गई। वे गहरी हरी पुतलियां बेजान और निर्जीव थीं। चीते की आंखें मर चुकी थीं।

मैंने जल्दी से नब्ज़ टटोली। नब्ज़ गायब थी। दिल की तरफ नज़र डाली। रानीजी अपने दोनों हाथों से दिल को ऐसे पकड़े थीं जैसे गोली सीधी उनके दिल में लगी हो। मैंने दोनों हाथ हटाए और दिल की हरकत देखी। दिल की धड़कन बन्द थी मगर गोली का कहीं निशान न था।

रानीजी को वहीं बिस्तर पर मुर्दा छोड़कर मैं ड्राइंग

रूम की तरफ भागा। भागता-भागता सीधा ड्राइंग रूम के बीच में चला गया और घूमकर चारों तरफ देखने लगा।

ड्राइंग रूम में कोई न था। कुंवरजी और उर्मिला की तस्वीरें अलग-अलग दो आमने-सामने की दीवारों पर लगी थीं और अपनी जगह से बिल्कुल न हिली थीं।

□ □ □

मुद्रक : राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स, दिल्ली | 1–65–10–24

हमारा उत्कृष्ट कथा-साहित्य

इन्दुमती : **सेठ गोविन्ददास**
भूल : **गुरुदत्त**
वनवासी **,,**
ममता **,,**
मैं न मानू **,,**
परिवर्तन **,,**
आभा : **आचार्य चतुरसेन**
धर्मपुत्र **,,**
पतिता **,,**
मोती **,,**
हृदय की परख **,,**
हृदय की प्यास **,,**
वासना के स्वर : **उपेन्द्रनाथ 'अश्क'**
शोले : **भैरवप्रसाद गुप्त**
बड़े सरकार **,,**
मंज़िल **,,**
रम्भा **,,**
त्यागपत्र : **जैनेन्द्रकुमार**
प्रतीक्षा : **राजेन्द्र यादव**
ज्वालामुखी : **मन्मथनाथ गुप्त**
दिशाहीन **,,**
सच और झूठ **,,**
स्वप्नमयी : **विष्णु प्रभाकर**
प्रायश्चित्त : **यज्ञदत्त शर्मा**
एक स्वप्न, एक सत्य **,,**
खून की हर बूंद **,,**
चन्द हसीनों के खुतूत **'उग्र'**
जुहू **,,**
बुधुआ की बेटी **,,**
रात और प्रभात **भगवतीप्रसाद वाजपेयी**
नीना : **अमृता प्रीतम**
अशू **,,**
बन्द दरवाज़ा **,,**
हीरे की कनी **,,**
रंग का पत्ता **,,**
नागमणि **,,**
ग़द्दार : **कृश्न चन्दर**
एक गधे की वापसी **,,**
एक गधे की आत्मकथा **,,**
प्यास **,,**
सपनों का क़ैदी **,,**
एक चादर मैली-सी : **राजेन्द्रसिंह बेदी**
लम्बी लड़की **,,**
वसुन्धरा : **शैलेश मटियानी**
पुनर्मिलन : **नानकसिंह**

एक रहस्य, एक सत्य : **नानकसिंह**
रजनी : **बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय**
आनन्द मठ ,,
दुर्गेशनन्दिनी ,,
देवी चौधरानी ,,
विषवृक्ष ,,
कपालकुण्डला ,,
इन्दिरा ,,
दो बहनें : **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**
जुदाई की शाम ,,
बहूरानी ,,
काबुलीवाला ,,
गोरा ,,
आंख की किरकिरी ,,
कुमुदिनी ,,
घर और बाहर ,,
मिलन ,,

चार अध्याय : **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**
उजड़ा घर ,,
नीरजा ,,
देवदास : **शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय**
चरित्रहीन ,,
शेष प्रश्न ,,
बिराज बहू ,,
गृहदाह ,,
मंझली दीदी : बड़ी दीदी ,,
श्रीकान्त ,,
चन्द्रनाथ ,,
दत्ता ,,
परिणीता ,,
शुभदा ,,
पथ के दावेदार ,,
विप्रदास ,,
ब्राह्मण की बेटी ,,

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया

●

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे बुक-स्टालों तथा रोडवेज बुक-स्टालों से मिलती हैं। अगर कोई कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाएं :

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली–३२